सबला

वर्ष 3 : अंक 5-6 सेवाग्राम विकास संस्थान, नई दिल्ली अगस्त-सितंबर, 1990

आज मेरे गांव में
बही कैसी ताज़ी हवा
भीगा तन-मन

जागी नई उमंग नई ताक
रास्ते दिखे साफ और आस
और मंज़िल छूने जितनी पा

इस अंक में

हमारी बात	1
बदले हैं हम, बदलेगी दुनिया (कविता) ——स्वाति	2
रीति-रिवाज जो स्त्रियों को कमजोर बनाते हैं ——सुहास कुमार	3
ताई की बेबसी ——विमला गोयल	6
मेरी जिंदगी की कहानी ——शशि चौहान	7
तू बढ़ती चल (कविता) ——सुहास कुमार	8
इल्म जैसी जहां में है दौलत नहीं ——कमला भसीन	9
स्त्रियों की मांग ——बिहार की नवसाक्षर बहनें	11
मैं लिख-पढ़ सकती हूं ——रानी पाल	12
रूप कंवर नहीं, गुलाब कंवर	14
साथिन रो कागद ——राज्य इदारा, जयपुर	16
क्यों मैं ही कहलाती बांझिन	19
आओ वादा करें ——आबिदा सुल्ताना	21
मैं हंसना चाहती हूं	21
कानूनी जानकारी का फायदा	22
आखिर साक्षर क्यों बनें ——शेफाली वार्तोनिया	24
स्वयंसेवी संगठनों से स्त्रियों का विकास	25
महिला पंचायत	29
राजकुमारी की कहानी	

सहयोग मंडल

कमला भसीन

सुहास कुमार

ज्ञानेंद्र प्रसाद जैन

'जागोरी' समूह

प्रतिभा गुप्ता

ग्रामीण बहनों की त्रिमासिक पत्रिका—शिक्षा विभाग, मानव संसाधन मंत्रालय, भारत सरकार और यूनीसेफ, नई दिल्ली द्वारा अनुदानप्रदत्त; डाक्टर शारदा जैन (सेवाग्राम विकास संस्थान, 1 दरियागंज, नई दिल्ली-110 002) द्वारा संपादित व प्रकाशित तथा इन्द्रप्रस्थ प्रेस (सी.बी.टी.), नेहरू हाउस, 4 बहादुरशाह जफर मार्ग, नई दिल्ली-110002 में मुद्रित।

हमारी बात

पिछले दिनों संयुक्त राष्ट्र संघ ने 75 देशों के राष्ट्रपतियों या प्रधान मंत्रियों का एक महासम्मेलन न्यूयार्क (अमेरिका) में आयोजित किया। सम्मेलन का मुख्य मुद्दा था—'बच्चों के अधिकार'। आज भी करोड़ों बच्चे अकाल मौत से जूझते हैं और रोटी मुहैया करने में बचपन बिताते हैं। आंकड़ों के अनुसार दुनिया भर में हर दिन 40 हजार बच्चे ऐसी बीमारियों से मरते हैं जिनका इलाज है और जिनसे बच्चों की रक्षा की जा सकती है।

इस महासम्मेलन में मोटे रूप से चर्चा के विषय थे—बच्चों को बीमारियों और मरने से बचाना, स्वस्थ शारीरिक व मानसिक विकास के लिए खेल कूद और शिक्षा के अवसर देना, बच्चों का शोषण रोकना और उन्हें स्वस्थ नागरिक बनाने के लिए समुचित अधिकार देना।

एक सवाल हमारे मन में बार-बार उठता है—क्या हम अपने स्तर पर बच्चों के अधिकारों की रक्षा करते हैं? क्या हम उन्हें वह सब दे रहे हैं जो उनको मिलना चाहिए? पढ़ाई-लिखाई और स्वास्थ्य रक्षा को ही लें। हमने पाया कि बहुत से बच्चों, विशेषकर लड़कियों को स्कूल नहीं भेजा जाता। न ही बीमारियों से बचने के लिए टीके लगवाने पर ध्यान दिया जाता है। ऐसा क्यों? क्या इसके लिए हम सब जिम्मेदार नहीं हैं? क्या इसकी जिम्मेदारी सिर्फ सरकार की है? क्या सामाजिक ढांचा इसके लिए जिम्मेदार है? हम आपके विचार जानना चाहते हैं। आप खुलकर अपने विचार हमें लिखें। आपके विचारों और सुझावों को हम 'सबला' के अगले अंक में छापेंगे। दो सबसे अच्छे पत्रों को इनाम दिया जाएगा।

पिछले कुछ दिनों से हमें यह महसूस हो रहा है कि 'हमारी बात' एकतरफा हो रही है। हम ही कहते चले जा रहे हैं। आप चुप हैं। हम आपकी बात भी सुनना चाहते हैं। आप अपने जीवन के अनुभव, अपने आसपास होने वाली घटनाओं, रूढ़ियों, रीति-रिवाजों आदि किसी भी विषय पर लिखें।

हम आपकी बात ज्यादा लोगों तक पहुंचाना चाहते हैं। न सिर्फ आपके और अपने बीच, बल्कि 'सबला' के सभी पाठकों के बीच एक संबंध बनाना चाहते हैं। आशा है आप जल्दी ही हमें लिखेंगी।

सुहास कुमार

बदले हैं हम, बदलेगी दुनिया

हम मेहनतकश इंसा हैं
मुट्ठी में हैं हमारे अधिकार
ढूंढ लिए हैं हमने
जीने के हथियार
हम नहीं हैं
घुट घुट कर मरने वालों में
ज़ोर जुल्म नहीं
सह सकते हम
जी सकते हैं हम
अपने दम पर
कर सकते हैं हम
हर चुनौती का सामना
बने हैं डाक्टर, इंजीनियर
टीचर, सैनिक, पुलिस भी
चला सकते हैं हम
करघा, चाक और हल भी
सीख गए हैं हम
अपनी आंखों से देखना
सीख गए हैं
अपने रास्ते खुद बनाना
बनाएंगे हम
एक नई दुनिया
एक नया समाज
अगला दिन, वर्ष नहीं,
सदी होगी हमारी।

स्वाति

रीति-रिवाज जो स्त्रियों को कमजोर बनाते हैं

सुहास कुमार

यह बात बहुत साफ है कि हमारे सामाजिक व धार्मिक रीति-रिवाज स्त्रियों के खिलाफ हैं। हमारे पूर्वज मनु ने जिनके बनाए सामाजिक नियम आज तक लागू हैं, सदियों पहले स्त्रियों का भाग्य लिख दिया था। उन्हें वेद पढ़ने की मनाही थी। उस समय शिक्षा के स्रोत वेद ही थे। "स्त्री कभी स्वतंत्र नहीं रह सकती। उसे बचपन में पिता के आधीन, जवानी में पति के आधीन और बुढ़ापे में बेटों के आधीन रहना होगा वरना समाज में अनाचार फैलेगा।"

स्त्री की आदर्श भूमिका मां और पत्नी के रूप में है जिसका मतलब है कि हर लड़की का ब्याह जरूर होना चाहिए। यदि वह ज्ञान-विज्ञान या कला-कौशल के क्षेत्र में, अथवा समाज सेविका के रूप में काम करे तो वह सम्मान की अधिकारी नहीं मानी जाती।

बचपन से भेदभाव

लड़की के जन्म पर खुशी के बजाए सांत्वना दी जाती है—"चलो, अगली बार बेटा हो जाएगा।" हर कदम पर उसे एहसास कराया जाता है कि वह लड़की है, इसलिए वह भाई से हीन है। खान-पान और शिक्षा-दीक्षा सब में भेद बरता जाता है। शुरू से उसे समझाया जाता है कि ससुराल में उसे समझौते करने ही होंगे। उसमें सहनशीलता आनी चाहिए और अपनी इच्छाओं को दबाकर रखना चाहिए। नौकरी करनी नहीं, इसलिए शिक्षा, कला-कुशलता की कोई जरूरत नहीं। शुरू से ही उसे कमजोर और अपंग बना दिया जाता है।

लड़की के कदम भटकेंगे तो समाज उसे माफ़ नहीं करेगा। कुलटा, कलंकिनी और वंश की इज्जत डुबाने वाली जैसे विशेषण उसे दिए जाएंगे। लड़की निर्दोष हो और बलात्कार का शिकार हो तो भी दोषी वही है। 'तू अकेली घर से क्यों निकली थी? तू फलां जगह क्यों गई थी? तू चिल्लाई क्यों नहीं? तू मर क्यों नहीं गई?' उसे आत्महत्या तक करने पर मजबूर कर दिया जाता है या घर से निकाल दिया जाता है।

बेटी से घर के सब काम करने की अपेक्षा की जाती है। यदि बेटे ने घर का कोई काम किया भी तो उसे मना कर दिया जाता है। "अरे छोड़, यह काम लड़कियों का है।" बहनों पर रौब गांठना, उनसे खाना पकवाने, कपड़े धुलवाने आदि कामों से सामाजिक ढांचा तो बनता ही है, पुरुष के अहम को भी बढ़ावा मिलता है। आगे चलकर वही पति-पत्नी के संबंधों में स्त्री की स्थिति बहुत हीन बना देता है।

प्रतिबंधों की शिकार

यौन संबंधी प्रतिबंध और आदर्श स्त्रियों के लिए ही हैं। पुरुष चाहे जितने संबंध रखे, एक से ज्यादा पत्नियां रखे, वैश्याओं के कोठे पर जाए, उसकी इज्जत नहीं बिगड़ेगी। वह बुढ़ापे में भी ब्याह कर सकता है, जबकि बाल-विवाह, विधवा का फिर से ब्याह न हो सकना, दहेज प्रथा, सती प्रथा, पर्दा प्रथा, देवदासी (जोगन) प्रथा स्त्री को कमजोर बनाती हैं।

बाल विवाह से लड़कियों के विकास के दरवाजे बंद हो जाते हैं। काफी समय पहले तक विधवाओं को काशी भेज दिया जाता था जहां पुजारी-पंडे और समाज के कथित प्रतिष्ठित लोग उनका जी भरकर यौन-शोषण करते थे।

घर की जिम्मेदारी, बच्चों के पालन-पोषण की जिम्मेदारी, वंश की इज्जत की जिम्मेदारी सब

स्त्रियों की है। उन्हें अनेक तरह के बंधनों में जकड़ दिया जाता है। सब व्रत-त्यौहार और धार्मिक रीति-रिवाज उन्हीं के लिए हैं, लेकिन मंदिर का पुजारी पुरुष होगा, यानि कि जिम्मेदारियों का पलड़ा भारी और अधिकार कुछ नहीं।
स्त्रियां अपवित्र होती हैं। अगर विधवा या बांझ है तो शुभ अवसर पर उसका रहना अपशकुन है।

कड़े नियम

स्वास्थ्य और सफाई की दृष्टि से जोड़ी पवित्रता मासिक धर्म और प्रसूति में छुआछूत से जुड़ गई। पारसियों में स्त्रियों की स्थिति काफी बराबरी की है। समान शिक्षा के अवसर लड़कियों को दिए जाते हैं, पर मासिक धर्म को लेकर इतने कड़े नियम हैं कि एक जगह मैंने सीढ़ियों पर कुछ हिस्से में पीतल के टुकड़े लगे देखे। पूछने पर पता चला कि मासिक धर्म के दिनों में पैर रखने के लिए हैं।

बौद्ध धर्म में भिक्षुणियां स्वीकार की गईं, पर उन्हें भिक्षुओं से नीचा स्थान दिया गया। इसाई धर्म में स्त्री पथभ्रष्ट करने वाली के रूप में दर्शाई गई है। इस वजह से पत्नी और उसकी संपत्ति पर पति को अधिकार दिया गया।
हिंदू धर्म में स्त्री को पुरुष की संपत्ति ही माना गया है। उसकी देख-रेख और रक्षा के नाम पर पुरुष ने उसे अपने आधीन रखा है। संपत्ति उसके नाम न होना उसे सबसे ज्यादा कमजोर बनाता है।
पति जब चाहे उसे घर से बाहर निकाल सकता है, क्योंकि घर पति का है। पति की छत्र-छाया में रहने के नाम पर स्त्रियां शायद सबसे ज्यादा अत्याचार सहती आई हैं।

सब व्रत-त्यौहार स्त्रियों के लिए बने हैं।
पति और बेटे की लंबी उम्र के लिए व्रत।
अच्छा पति पाने के लिए व्रत, (लड़का) न होने पर उसके लिए व्रत आदि। धर्म को चलाना उसकी जिम्मेदारी है, पर जब अधिकार या तलाक का सवाल उठता है तब उसे नहीं दिया जाता।

बदलाव कैसे ?

आज हमारे सामने बहुत बड़ा सवाल है कि क्या हम इन रीति-रिवाजों को चलने देना चाहती हैं ? क्या हम सदा किसी के सहारे, किसी की छाया बनकर रहना चाहती हैं ? क्या हमें अपने आप में मजबूत नहीं बनना, ताकि यदि किसी वजह से सहारा न मिले तो भी हम जी सकें ?
जीने का मतलब अपनी इच्छाओं को पूरा कर सकना है, न कि सदा दूसरों के हिसाब से चलना।

यह मिथक है कि पुरुष स्त्रियों की रक्षा करते हैं। क्या द्रौपदी के पांच पति, ससुर, ददिया ससुर, गुरु व महात्मा द्रौपदी को भरी सभा में अपमानित होने से रोक सके ? महाभारत में लिखा है कि कृष्ण भगवान ने उसकी रक्षा की। इसका मतलब है कि हम अपनी रक्षा का कवच खुद बना सकती हैं। हमें अपने ऊपर अत्याचार या ज्यादतियों को सहते नहीं रहना चाहिए। हमें अपने काम और मेहनत की कीमत खुद आंक लेनी होगी, तभी दूसरे भी उसे समझेंगे।

घर में किए जाने वाले काम, जैसे पानी लाना, ईंधन जुटाना, खाना बनाना, सफाई करना, बच्चों की देख भाल करना, जानवरों को चारा-पानी देना, पति के धंधे में मदद करना आदि बाहर का कोई व्यक्ति करे तो उसे पैसे देने पड़ेंगे। यदि आप यही सब काम दूसरे के घर जाकर करें तो आपको मजदूरी मिलेगी। फिर अपने घर में इन कामों की कीमत क्यों नहीं आंकी जाती ?

अगर 90 फी सदी औरतें अपने पतियों से मार खाती हैं तो वह एक-एक घर की समस्या कैसे है ? अगर उन्हें ससुराल वालों द्वारा शारीरिक या मानसिक रूप से सताया जाता है तो यह घरेलू समस्या कैसे रह गई ? पति आवारा है या काम नहीं करता या पत्नी को छोड़ देता है, या वह विधवा हो जाती है या पति दूसरी औरत ले आता है या किसी कारण स्त्री घर छोड़ने पर मजबूर होती है, तो वह सम्मानपूर्वक क्यों नहीं रह सकती ?

बहनों के नाम एक निमंत्रण-पत्र

प्रिय बहनो,

कालीकट (केरल, दक्षिण भारत) में 28 से 31 दिसंबर 1990 तक एक अखिल भारतीय महिला सम्मेलन होगा। हमें आशा है कि बड़ी संख्या में बहनें और महिला समूह इसमें भाग लेंगे।

राष्ट्रीय स्तर पर पहले दो बार बंबई (1980 और 1985) में और तीसरी बार पटना (1988) में महिला समूह मिल चुके हैं। इन सम्मेलनों में बलात्कार, घरेलू हिंसा और अत्याचार, वैश्यावृत्ति, स्त्रियां और कामकाज तथा कानून में सुधार आदि के मुद्दों पर बातचीत की गई।

इस बार चर्चा के मुख्य मुद्दे होंगे—

- स्त्रियां और राजनीति
- धार्मिक रूढ़िवाद व जातिवाद
- स्त्रियों के आंदोलन का स्वास्थ्य संबंधी नज़रिया
- नारीवाद और स्त्रियों पर अध्ययन
- स्त्रियों के आंदोलन का सांस्कृतिक पहलू
- संचार साधन
- स्त्रियां और राष्ट्रीय योजना नीति
- स्त्रियां और संपत्ति संबंधी कानून
- स्त्रियों के प्रति हिंसा।

सम्मेलन में हिस्सा लेने वालों के रहने व खानपान के खर्चे के लिए बहनों से चंदा भेजने का अनुरोध है। महिला समूह 500 रु० से 1,000 रु० नकद या अनाज व खाने का अन्य सामान भेजकर सहयोग दें।

रहने के प्रबंध के लिए पैसों की ज़रूरत होगी। छोटे शहरों के समूहों से 500 से लेकर 1,000 रु० तक की राशि या अनाज और खाद्य सामग्री के रूप में योगदान की अपेक्षा की जाती है। इसको सफल बनाने के लिए आपका सहयोग और उपस्थिति ज़रूरी है।

शुभकामनाओं सहित

केरल समन्वय समिति
द्वारा बोधन
28/895 मे डे रोड
डाकखाना—चेरायूर
कालीकट-673017

कमजोर सामाजिक ढांचा

यह सब हमारे सामाजिक और कुछ हद तक राजनैतिक ढांचे का नतीजा है जिसे बदलना होगा। सबसे पहले हमें यह समझना होगा कि हमारी समस्या अकेले हमारी नहीं है, बल्कि हमारी जैसी 90 प्रतिशत बहनें हैं जिन्हें घर व बाहर लिंग भेद सहना पड़ता है। उन्हें हीन दृष्टि से देखा जाता है। समान काम के लिए उसे कम मजदूरी दी जाती है। इसके पीछे भावना यह है कि कमाकर लाने की ज़िम्मेदारी पुरुष की है, स्त्री को कम पैसे मिलने से भी उसका काम चल जाएगा। परन्तु कितने घरों में उसकी कमाई बिना काम नहीं चल सकता? कितने घरों में वह परिवार की मुखिया है और पूरे घर की ज़िम्मेदारी उसकी है, न हो तो भी उसकी मेहनत की कीमत कम क्यों आंकी जाती है? उसे राशन कार्ड क्यों नहीं मिलता? संपत्ति या ज़मीन उसे विरासत में क्यों नहीं मिलती? सरकार उसे ज़मीन क्यों नहीं देती?

ये ही कमज़ोर मांएं जब अपने बच्चों का पालन ठीक तरह नहीं कर पातीं, तो क्या बेटों के रूप में पुरुषों पर उसका असर नहीं पड़ता है? इस सामाजिक ढांचे में बहुएं सताई जाती हैं तो क्या आपकी बेटियां बच जाती हैं? घूम फिरकर गलत सामाजिक ढांचे का असर परिवार के सब सदस्यों पर पड़ता है। मां के पढ़ी-लिखी न होने से क्या बेटे की शिक्षा अधूरी नहीं रहती? क्या उसके शारीरिक मानसिक विकास में अंतर नहीं पड़ता? पत्नी को नीचा मानकर क्या पति उसकी मित्रता और अच्छी सलाह से वंचित नहीं रह जाता?

(इस लेख में अनेक प्रश्न उठाए गए हैं, जिन पर पाठकों की प्रतिक्रियाएं अपेक्षित हैं) □

एक सच्ची कहानी

ताई की बेबसी

विमला गोयल

सुबह-सुबह ताई की बेटी कमलेश का लिखा पोस्टकार्ड पाकर मन बहुत खराब हुआ। वह ताई जिनके आंगन में मैं गुड़िया खेलती थी, आज कितनी दुःखी है। एक दुबले-पतले कद की सांवली प्रतिमा आंखों के सामने आ गई। ताई का जीवन काफी संघर्षपूर्ण था। ताऊ कुछ खास पढ़े-लिखे नहीं थे। अपने और परिवार के गुज़ारे के लिए किराने की एक दूकान खोल ली थी। छोटे से बाज़ार के किनारे उनकी दूकान थी। बिक्री से गुज़र हो जाती थी।

ताई ने बेटे की आशा में पांच बेटियों को जन्म दिया। बेटियों के सुन्दर नाम रखे थे। शीला, सावित्री, राधा, उमा। जब पांचवीं बेटी हुई तो ताई ने भगवान से बेटियों के जन्म के लिए क्षमा मांगी और उसका नाम रखा क्षमा। तब जाकर ढेर सारी मनौतियों के बाद उनके घर पुत्र-रत्न का जन्म हुआ। प्यार से सब उसे बिल्लू पुकारते थे। बिल्लू मां-बाप एवं बहनों सबकी आंखों का तारा था।

ताई को अब बिल्लू के सिवा कुछ नज़र नहीं आता था। बिल्लू को छींक भी आ जाती या वह ज़रा सा रो भी पड़ता तो सारे घर में कुहराम मच जाता था। कोई झाड़-फूंक वाले को बुलाने जा रहा है, तो कोई हींग गरम कर पेट पर मल रहा है कि कहीं पेट में दर्द न हो। बिल्लू के रोते ही घर का सारा कामकाज ठप्प हो जाता था। बिल्लू की मुस्कराहट वापस आने पर ही सब चैन की सांस लेते थे। ताई खुश थी पर अभी एक वज्रपात और होना था। एक बिटिया रानी और आ गई, नाम रखा गया कमलेश।

ताऊ घर के किसी काम में दिलचस्पी नहीं लेते थे। खाली समय में आस-पास के लोगों के साथ बाग में पेड़ के नीचे चौपड़ खेलते रहते थे। उन्हें कोई फिक्र नहीं थी कि आधा दर्जन बेटियां कैसे ब्याही जाएंगी? ताई किसी तरह छोटी सी आमदनी में काट-छांटकर गुज़ारा करती थी। सबसे अच्छी चीज़ बिल्लू को दी जाती, फिर ताऊ को और उसके बाद बेटियों और ताई का नंबर आता था। कई बार तो ताई को कुछ चखने तक को नहीं मिलता था। बेटियों के बारे में उनका कहना था, "अरे, लड़कियों का क्या, वे अपनी ससुराल में जाकर खा-पहन लेंगी।" उन्हें बिल्लू ही सबसे प्रिय था।

ताई के भाइयों ने बेटियां ब्याहने में मदद की। पांच लड़कियों की शादी हो गई। बिल्लू पढ़ने में होशियार था। ऊंची सरकारी नौकरी में आ गया। दिल्ली में नौकरी लगी तो मां की आंखों का तारा दूर चला गया। एक साल बाद मकान मिलने पर वह मां-बाप और छोटी बहन को दिल्ली ले गया। सुंदर बड़े घराने की लड़की से ब्याह रचाकर ताई फूली नहीं समा रही थी।

कुछ दिनों बाद मैंने बिल्लू, उसकी बहू और कमलेश को खाने पर बुलाया। लड़की सुघड़ व सुन्दर लगी, पर ताई का ज़िक्र आने पर नाक-भौं सिकोड़ने लगी। बोली, "वह बड़े पुराने विचारों के लोग हैं। उन सब के साथ मैं अपने मन का कुछ भी नहीं कर सकती।" कमलेश की आंखें भाभी की बात सुनकर भर आईं पर कुछ बोल नहीं सकी।

एक बार ताऊ की बीमारी की खबर सुनकर वहां गई तो मन बड़ा खराब हुआ। ताऊ, ताई और कमलेश को घर के पीछे की कोठरी में भेज दिया गया था। बिल्लू की बहू सुनीता का कहना था कि उनके सामने के कमरे में रहने से सारा घर गंदा दीखता है। ताऊ काफी कमज़ोर लगे। एक मैली सी चादर ओढ़े हुए थे। ताई गुमसुम सी लगी। अपनों के बीच वह

पराए से रह रहे थे। कमलेश की शादी एक बड़े उम्र के आदमी से जिसकी पहली पत्नी से दो बच्चे थे कर दी गई थी। बेटियां मां-बाप से मिलने आती थीं। दो-चार दिन किसी तरह अनचाहे मेहमानों की तरह काट कर चली जाती थीं।

एक बार बिल्लू सरकारी काम से बाहर गया हुआ था। पीछे से ताऊ जी बिना बेटे को देखे ही संसार से कूच कर गए। फिर बिल्लू की नौकरी विदेश में लग गई। ताई को न चाहते हुए भी बड़ी बेटी के पास जाकर रहना पड़ा। एक बार जब उन्हें देखने गई तो वे मेरा हाथ पकड़ कर रोने लगीं—

"बिल्लू के हाथ की दो लकड़ियां शायद मुझे भी नसीब नहीं होंगी।" मैं सोचने लगी वह बिल्लू जिसके लिए उन्होंने जी जान लगा दी थी कुछ रुपए हर महीने भेजकर अपना कर्त्तव्य पूरा कर लेता है।

आज चिट्ठी से ताई की दुर्दशा का अंदाज़ा हुआ। एक ओर दूर बसे अकेले पुत्र की ममता, दूसरी ओर उसके व उसकी बहू के व्यवहार से उनका मन बेहद दुःखी है। ताई बेटी के घर भी सुख-चैन से अपने संस्कारों की वजह से नहीं रह पा रही हैं।
क्या उनके मन की गहराई में कहीं कोई दोष-भावना कचोट पैदा कर रही है ? □

मेरी जिंदगी की कहानी

जिंदगी ने आंख भी न खोली थी
कि शादी के हवनकुंड में झोंक दिया मुझको
शादी का मतलब समझ में आया भी न था
कि तलाक देकर छोड़ दिया मुझको।

उमर इतनी छोटी थी कि
गुड़िया खेलने और शैतानी करने को
मन चाहता था
पर मजबूर थी बचपन में ही
अपने आपको बड़ा समझना पड़ा
क्योंकि तलाकशुदा की मोहर लग चुकी थी मुझको।

इस मोहर को लेकर पढ़ाई को अपना हमसफर बनाया
लेकिन पढ़ाई का साथ भी परिवार वालों ने छुड़ाया
जवान हो गई थी समझने लगी थी अपने आपको
जवानी को शक की निगाहों ने घेर लिया
पिता ने परिवार, समाज के डर से
पढ़ाई का भी साथ छुड़ा दिया।

फिर तय हुआ कि ऐसा कब तक चलता रहेगा
सारी उमर यह लड़की पत्थर की तरह
छाती पर रखी रहेगी
बिना सोचे समझे फिर से शादी
एक लालची परिवार और
ऐयाश लड़के से कर दी
जब उसकी भूख पूरी नहीं हुई तो उसने भी
झूठे इल्जाम लगाकर
अदालत में खड़ा कर दिया मुझको।

अब अदालत के चक्कर लगा रहे हैं हम
मैं तो केस लड़ना ही नहीं चाहती
फिर भी लड़े जा रहे हैं हम
समझ में नहीं आ रहा है कि
जिंदगी मेरी है या मां-बाप की
उनकी इज्जत की भट्टी में
जिंदगी अपनी झोंके जा रहे हैं हम।

सवाल उठता है ?
सुना है सबकी जिंदगी अपनी है
जिंदगी पर अधिकार अपना है
कैसे और किसके साथ रहेंगे
तय करते हैं अपने आप
फिर मेरी जिंदगी पर
परिवार वाले क्यों
अपनी मोहर लगाए जा रहे हैं ?

शशि चौहान

तू बढ़ती चल

तू बढ़ती चल
एक हज़ारों, लाखों में तू बढ़ती चल
नया ज़माना आएगा
ढेरों खुशियां लाएगा
अंजाम की तू परवाह न कर
तू बढ़ती चल

पहुंचे मंज़िल पर वह
जो हिम्मत न हारे
रोड़ों की तू परवाह न कर
तू बढ़ती चल

दिशाएं सुनाएं तेरा गीत
पहचाने ज़माना तुझको
ओ ! मुड़कर पीछे कभी न देख
तू बढ़ती चल

तुझे सहारा देने को
हम सब तेरे साथ हैं
अपनी ताक़त पहचानकर
तू बढ़ती चल

बादल की गरज
बिजली की चमक
रोक सके न तेरे कदम
तू बढ़ती चल

सुहास कुमार

इल्म जैसी जहां में है दौलत नहीं
इल्म हासिल जहां हमको जाना वहीं

कमला भसीन

आप इल्म या ज्ञान को धन या दौलत मानती हो कि नहीं? या आप समझती हो कि सिर्फ़ सोना, चांदी, ज़मीन-जायदाद ही धन दौलत होते हैं?

मैं तो इल्म को दौलत मानती हूं और बहुत बड़ी दौलत मानती हूं। इल्म ऐसा धन है जिसकी मदद से दूसरा धन भी कमाया जा सकता है। आगे बढ़ने के लिए, कमाने और खाने के लिए इल्म या ज्ञान बहुत ज़रूरी है। अगर किसी में कोई भी ज्ञान न हो तो वह भला कैसे कमा कर खाएगी, कैसे अपना काम चलाएगी?

वैसे हर इंसान के पास कोई न कोई इल्म तो होता ही है। कुछ न कुछ तो हर औरत जानती है। जैसे हर औरत को घर का काम करना आता है, खाना पकाना, कपड़े सीना, बच्चों की देखभाल करना। इसके साथ-साथ बहुत सी औरतों को खेती करना आता है। कई औरतों को घरेलू दवाइयों का भी ज्ञान होता है। औरतों और मर्दों को कई और धंधे भी आते हैं जैसे बर्तन बनाना, चमड़े से चीज़ें बनाना, लकड़ी का काम, रस्सी बनाना, लोहे का काम करना आदि।

नई ज़रूरतें

पहले तो जिंदगी के लिए ज़रूरी इल्म घरों और परिवारों में ही मिल जाता था। मां-बाप का धंधा बच्चे सीख लेते थे और उसी धंधे में लग जाते थे। लेकिन अब यह सब बदल रहा है।

कुछ पुराने धंधे तो धीरे-धीरे कम या खत्म होते जा रहे हैं। रबर और प्लास्टिक के जूते और चप्पलें चलने से चमड़े का काम कम हो गया। फैक्ट्री में नायलौन की रस्सियां बनने लगीं तो रस्सी बनाने का धंधा चौपट हो गया। कपड़ा फैक्ट्रियों में बनने लगा तो हाथ-करघे ठप्प हो गए।

ऐसी हालत में नये काम और नया ज्ञान पाना जरूरी हो गया है। घरेलू ज्ञान के भरोसे जीना अब मुश्किल हो गया है। घरेलू धंधों में सुधार करना ज़रूरी हो गया है। रोज़ कुछ नया ढूंढा जाता है, बनाया जाता है। इस नये ज्ञान के साथ अगर हम आगे न बढ़ें तो हम पीछे रह जाते हैं। और यही हो रहा है।

खाते-पीते घरों वाले और उनके बच्चे पढ़-लिख कर नया ज्ञान हासिल कर आगे बढ़ते जा रहे हैं। जो गरीब हैं, जिनके पास साधन नहीं हैं पढ़ने-लिखने के, नया ज्ञान पाने के वे और भी पिछड़ते

जा रहे हैं। अमीरों और गरीबों में अब फ़र्क सिर्फ़ पैसे या धन दौलत का नहीं है—फ़र्क ज्ञान का भी है। पैसे वालों ने इल्म की दौलत पर भी कब्ज़ा किया हुआ है।

औरत और मर्द में भी इल्म का फ़र्क रहा है। शुरू से ही औरत को नये ज्ञान से दूर रखा गया या वह स्वयं दूर रही क्योंकि उसे नया ज्ञान पाने का मौका ही नहीं दिया गया। अमीर घरों की औरतें भी इल्म से गरीब रहीं। मर्द नया सीख कर आगे बढ़ते रहे और अपनी शक्ति और अपना रौब और बढ़ाते रहे। औरत पिछड़ती गई, कमज़ोर और मोहताज होती गई।

इल्म का हथियार

औरतों और गरीबों को अपनी मोहताजी और पिछड़ेपन से छुटकारा पाने के लिए इल्म का सहारा लेना होगा। ज्ञान की शक्ति से ही वे आगे बढ़ पाएंगे। इल्म को ही हथियार बनाना होगा—हथियार औरों को मारने के लिए नहीं—अपना अधिकार मांगने के लिए, जो उनके हक़ हथिया रहे हैं उन्हें रोकने के लिए। इल्म दौलत भी है और ताक़त भी। इल्म की दौलत सदियों से सिर्फ़ कुछ लोगों के हाथ में रही है और उन्होंने इल्म को हथियार बनाया हुआ है औरों को दबाने का। औरों पर धौंस जमाने का। इससे छुटकारा तभी होगा जब सभी पिछड़े वर्ग इल्म की दौलत हासिल करेंगे।

पहले तो ग़रीबों और औरतों को इल्म चुराना पड़ता था। उन्हें हक़ नहीं था पढ़ने-लिखने का, बंधन थे उन पर। कहा जाता था कि औरतों और नीची जाति वालों को पढ़ने-लिखने का अधिकार नहीं है। क्यों नहीं था अधिकार? क्योंकि ऊंची जात के ज्ञानी मर्द नहीं चाहते थे कि ज़्यादा लोग ज्ञानी और ताकतवर हों, इससे उन्हें खतरा था। उस ज़माने में गरीबों, नीची जाति वालों और औरतों को छिप कर इल्म हासिल करना पड़ता था।

एकलव्य की कहानी सुनी है न? वह एक होनहार बच्चा था, सीखने की लगन थी लेकिन आदिवासी था। इसीलिए गुरु द्रोणाचार्य ने एकलव्य को तीर चलाना सिखाने से मना कर दिया। गुरु जी सिर्फ़ राजकुमारों को शिक्षा देते थे।

एकलव्य ने इल्म पाने की लगन नहीं छोड़ी। वह निराश नहीं हुआ। उसने गुरु द्रोणाचार्य को गुरु मान कर अपने आप तीर चलाना सीखा। वह इतना अच्छा तीरंदाज बन गया कि पांडव पुत्रों को मात कर देता। गुरु भला यह कैसे सह सकते थे कि कोई आदिवासी बच्चा उनके राजकुमार शिष्यों का मुकाबला करे? यह तो खतरनाक था। ऐसा हो जाए तो ऊंची जाति वालों का बोलबाला खत्म हो जाए। तो गुरु जी ने क्या किया? अपनी और राजकुमारों की सत्ता बचाने के लिए एकलव्य से गुरु-दक्षिणा में उसका अंगूठा मांग लिया। अंगूठा नहीं होगा तो तीर नहीं चला पाएगा। एकलव्य ने अंगूठा दे दिया और अपनी शक्ति गंवा दी। तब उसके पास शायद कोई चारा नहीं था। अकेला वह पांडवों का मुकाबला नहीं कर सकता था।

इस कहानी से पता लगता है कि इल्म हर कोई पा सकता है लेकिन जो लोग सत्ता में हैं वे नहीं चाहते कि सब सीखें और आगे बढ़ें। लेकिन इल्म तो किसी की बपौती नहीं है। और इंसान होने का तो मतलब ही है इल्म पा कर आगे बढ़ना। हर इंसान का हक़ ही नहीं फ़र्ज़ भी है कि वह नया ज्ञान पाए, वह ज्ञान चाहे जहां से और चाहे जिस से मिले। कुरान शरीफ़ में तो यहां

तक लिखा है कि औरतों को इल्म पाने के लिए अगर दूर देश भी जाना पड़े तो जाना चाहिए। ख़ैर, अब तो कहीं दूर जाने की जरूरत नहीं है। जगह-जगह केन्द्र खुल रहे हैं, स्कूल खुल गए हैं। अगर लगन है तो रास्ते बहुत हैं।

इल्म पाने के लिए अब पढ़ना लिखना आना ज़रूरी हो गया है। अब सारा इल्म सिर्फ परिवारों से पाना मुमकिन नहीं है। नई जानकारी देने के लिए अगर आसपास लोग न हों तो किताबें, पत्रिकाएं पढ़कर ही नया ज्ञान पाया जा सकता है। आजकल साक्षरता जरूरी हो गई है इल्म हासिल करने के लिए।

साक्षरों का फ़र्ज़

हम लोग जो साक्षर हैं उनका यह फ़र्ज़ है कि हम औरों को साक्षर बनाएं। अपने ज्ञान के दीप से दूसरों के दीप जलाएं। अगर हम यह मानते हैं कि इल्म दौलत है तो इस दौलत को हमें बांटना चाहिए, औरों तक पहुंचाना चाहिए। यही तो एक दौलत है जो जितना बांटो उतनी बढ़ती है। जो इल्म की दौलत औरों को देती है उसका इल्म और बढ़ता है। यानि जो इल्म बांटती है वह और दौलतवान बनती है। इस से बड़ा सौभाग्य और पुण्य क्या हो सकता है कि हम औरों को पढ़ना-लिखना सिखा सकें, उन्हें पांच-छः महीने में इस क़ाबिल बना सकें कि वे किताबें पढ़कर खुद नया ज्ञान, नया हुनर हासिल कर सकें।

इक दीप से इक और दीप जले
ज्ञान और साक्षरता फूले फले। □

स्त्रियों की मांग

स्त्रियां हम गांव की हैं निज बिहार प्रदेश की
गांव की पूंजी बढ़ाकर लाज रखती देश की
गांव में जितने मवेशी ढोर डंगर बकरियां
हम निछावर प्राण उन पर कर रहीं सब नारियां
दूरियां पार करके चारा ढोती नारियां
कोसों, मीलों पानी ढोकर हम नहलाते गाय को
फिर उन्हें चारा खिलातीं साफ़ रखती बखार को
गंदगी हम साफ़ करके गोइठा बनाती सांझ को
गांव की सहकारिता में पुरुष मेंबर बहुत हैं
नारियों की संख्या कम, फिर भी सेवारत हैं
चाहती सरकार से हैं भूमि का अनुदान हम
घर बनाकर डंगरों का फिर करें कल्याण हम
अपनी गैया मैया पर कर दें प्राण निछावर हम
स्त्रियां हम गांव की है निज बिहार प्रदेश की।

गीत रचा—बिहार की नवसाक्षर बहनों ने

मैं लिख-पढ़ सकती हूं

रानी पाल

मेरा नाम रानी पाल है। मैं पढ़-लिख सकती हूं। आपको मेरा यह परिचय बड़ा अजीब सा लगा होगा। मेरी कहानी पढ़ने के बाद आपको अहसास होगा कि मैं अपने आपको पढ़ा-लिखा कह कर कैसा अनुभव कर रही हूं।

मैं अलीगढ़ के गन्यावली गांव की रहने वाली हूं। हम एक भाई और चार बहने हैं। आज कल मैं चिल्का में रह रही हूं। यहां मेरे पति श्री डी॰पाल, मास्टरचीफ जी॰आई॰ हैं। इस समय मेरी उम्र लगभग 27 वर्ष है। मेरे तीन बेटे हैं। सबसे बड़ा लड़का नवीं कक्षा में पढ़ता है।

जब मैं छोटी थी, तब मुझे याद है—हमारे गांव से लगभग 7-8 मील दूर एक स्कूल था। वैसे हमारे गांव के बड़े-बूढ़े लड़कियों की पढ़ाई को अधिक महत्त्व नहीं देते थे मगर फिर भी मेरे घर वालों ने मुझे स्कूल भेजा। लेकिन एक तो स्कूल बहुत दूर था, मैं जाते-जाते थक गई। दूसरे-पहले ही दिन दोपहर को ऐसी घटना हुई जिसने मुझे लगभग 27-28 साल तक बिलकुल अनपढ़ रखा। दोपहर के समय जब सब बच्चे अपना-अपना खाना खा रहे थे तो मेरी रोटी कुत्ती ले कर भाग गई। मैं पूरे दिन भूखी रोती रही। गुस्से में मैंने उस बेचारी लड़की को भी काट लिया जो मुझे अपने साथ स्कूल लेकर आई थी।

कुछ स्कूल में भूखे रहने का डर, कुछ स्कूल के दूर होने का आलस्य और कुछ मेरे घर वालों का भी उत्साह न दिखाना। इन सब ने मिल कर कुछ ऐसा रंग दिखाया कि मैं कभी फिर पढ़ने नहीं गई। पूरे घर में बस मेरा भाई ऐसा था जो चाहता था कि मैं पढ़ूं। वह डांटता कि एक दिन भूखी रह गई तो मर तो नहीं गई, पढ़ने जाया कर।

लेकिन ऐसा कभी नहीं हो सका। मुझे देख कर मेरी दूसरी बहनों ने भी कभी स्कूल का मुंह नहीं देखा।

साढ़े तेरह वर्ष की उम्र में मेरी शादी हो गई। थोड़े समय बाद ही मुझे अपने अनपढ़ होने का अहसास होने लगा। जब मेरे पति जहाज पर चले जाते थे तो न तो मैं इन्हें चिट्ठी लिख सकती थी और न ही तब तक इनकी चिट्ठी सुन सकती थी जब तक कोई पढ़ कर सुनाने वाला न मिले। मुझे अपने अनपढ़ होने पर बड़ा गुस्सा आता। हनुमान चालीसा, आरती, धार्मिक किताबें, मैं कुछ भी नहीं पढ़ सकती थी। रेल में सफर करते समय हर स्टेशन पर पूछना पड़ता था कि कौन सा स्टेशन आया है। न अखबार पढ़ सकती थी न कोई कहानी की किताब। लगता था एक बार हाथ से निकला पढ़ाई करने का मौका फिर कभी नहीं मिलेगा। एक तो बच्चे छोटे-छोटे थे, दूसरे काम बहुत थे। मेरे पति ने कभी पढ़ाई करने के लिए मना तो नहीं किया लेकिन कभी ज़ोर भी नहीं दिया। फिर इतनी बड़ी होकर पढ़ाई करने में थोड़ी झिझक भी आती थी।

फिर मेरे सौभाग्य से हम चिल्का में आए। बच्चे थोड़े समझदार हो गए थे और बड़ा लड़का

आठवीं में पढ़ रहा था। यहां नौसेना स्त्री संघ की तरफ से प्रौढ़ शिक्षा की कक्षा लगती थी। आखिर मैंने हिम्मत करके नाम लिखवा ही दिया। मैं सुबह जल्दी उठ कर सारा काम खत्म करती और वेल्फेयर सेंटर पहुंच जाती। पड़ोसी बोलते थे—अब क्या पढ़ने जाती है? यह भी कोई उम्र है तेरे पढ़ने की। इतने बड़े-बड़े बच्चे हो गए हैं। मेरा जवाब होता, "पढ़ने जाती हूं कोई बुरा काम थोड़े ही है, शर्म कैसी? अनपढ़ रहना ज्यादा शर्म की बात है।"

मैं लगभग छः महीने में किताब पढ़ने लगी। टीचर के साथ-साथ मेरे बच्चों ने भी मेरी बहुत मदद की। आधे अक्षर और कुछ कठिन शब्द मेरी समझ में नहीं आते थे। मैं निशान लगा कर बाद में बच्चों से या टीचर से पूछती थी। सभी बड़े प्रेम से समझा देते थे।

आज मैं अच्छी तरह हिंदी लिख-पढ़ सकती हूं। घर में सभी खुश हैं कि अब मैं खुद चिट्ठी लिख और पढ़ सकती हूं। अखबार, कहानी की किताबें और धार्मिक किताबें पढ़ सकती हूं। पहले तो आरती भी नहीं पढ़ी जाती थी। अब तो मैं हनुमान चालीसा भी पढ़ लेती हूं।

सजावट, सफाई-सुथराई, फिल्म और देश विदेश के बारे में खूब पढ़ती हूं।

हाल ही में मैंने एक जगह पढ़ा था, भोपाल की गैस दुर्घटना के बाद वहां के लोगों को कैंसर हो रहा है। यह पढ़ कर मुझे बहुत दुख हुआ।

मेरी अपनी तो कोई लड़की नहीं है। अगर होती तो मैं उसे खूब लिखाती पढ़ाती, अपने लड़कों की तरह।

मुझे यह देख कर बड़ी खुशी होती है कि मेरी ससुराल के गांव में ही स्कूल खुल गया है। आज सभी लोग अपनी-अपनी बेटियों को पढ़ने भेजते हैं।

मैं अपने पड़ोस की अनपढ़ महिलाओं से कहती हूं कि वे भी पढ़ें और काफी ने मेरी बात मान भी ली है।

मैंने हिंदी तो सीख ली है, अब मैं गणित सीखना चाहती हूं। मुझे गिनती पहचानना आ गया है। चिल्का में रहते-रहते मैं ज़रूर गणित भी सीख लूंगी।

आज जब मैं अखबार, किताबें, हनुमान चालीसा पढ़ती हूं, चिट्ठी लिखती हूं और स्टेशनों के नाम खुद ही पढ़ लेती हूं तो आप अनुमान लगा सकते हैं मुझे कितना अच्छा लगता होगा।

इसीलिए मैंने शुरू में अपने परिचय में कहा था—"मेरा नाम रानीपाल है, मैं लिख-पढ़ सकती हूं।" □

रूप कंवर नहीं, गुलाब कंवर

दौराला की रूप कंवर की चिता की आग अभी भी हमारे दिलों में जल रही है। क्या वह मन से सती होना चाहती थी? एक पूरा जीवन उसके सामने था। पुरुष प्रधान समाज में धर्म, समाज, परिवार. की इज्जत आदि का हवाला देकर आखिर कब तक औरतों का शोषण होता रहेगा। हमें गुलाब कंवर पैदा करनी हैं। लड़कियों, औरतों की सोई ताकत जगानी है।

संपादिका

उसका नाम रूप कंवर नहीं, गुलाब कंवर है। उम्र पैंतीस के आसपास। घाघरा, कमीज और ओढ़नी उसका पहनावा है। चुरू के पास के एक राजपूतों के गांव की बहू है गुलाब कंवर। अगर वह हिम्मत हार जाती तो वह भी उन हज़ारों औरतों में से एक होती जो रूढ़ियों, अंधविश्वासों और परदे के पीछे घुट-घुट कर दम तोड़ देती हैं।

गुलाब कंवर ने हिम्मत नहीं हारी। वह उठ खड़ी हुई—अपने पांवों पर। सात क्लास पढ़ी हुई गुलाब कंवर ने अक्षरों को अपना सहारा बनाया। उसने अक्षरों की अलख जगाई अपने गांव में, आसपास की ढाणियों (बस्तियों) में।

आज गांव की औरतें गुलाब कंवर को ढूंढती रहती हैं। कोई पढ़-लिख कर छोटा मोटा काम करना चाहती है। कोई गुलाब कंवर के पास इस बात की शिकायत लेकर आती है कि उसका पति दारू पीता है और उसे पीटता है। गुलाब सब लुगाइयों (औरतों) की बात धीरज से सुनती है और अनपढ़ और अनजान औरतों के कानों में जागरण के मंत्र फूंकती है। अपने गांव में गुलाब कंवर प्रौढ़ शिक्षा केन्द्र चलाती है। जब गुलाब काले बोर्ड पर 'क' लिखना सिखाती है तो डेढ़-डेढ़ हाथ के कई घूंघट अपने आप उठ जाते हैं।

संग की सहेली, पढ़ने चलो, चलो सहेली। चुरू की उस ठंडी और धुंध में डूबी रात में एक स्वर गूंज रहा था। यह था गुलाब कंवर का।

गुलाब की उंगलियां हारमोनियम पर थिरक रही थीं। गोद में बैठा पांच साल का बच्चा टुकुर-टुकुर उन औरतों को देख रहा था जो उसकी मां के साथ गा रही थीं—"संग की सहेली, पढ़ने चलो।"

उस रात देर तक गुलाब कंवर मीठे स्वर में गाती रही। जागरण के गीत, लोक गीतों के आधार पर रचे हुए गीत, उस इलाके की औरतों को अब याद हो चले हैं।

गुलाब कंवर और उसकी बहन ब्याह कर ससुराल आई थी, 'ठंढ' राजपूतों का गांव। वहां दोनों बहनों ने बहुत अत्याचार सहे। यह याद कर गुलाब की आंखें आज भी नम हो जाती हैं। "औरतों की भी कोई जिंगाड़ी (जिंदगी) है। भेड़ बकरियां भी औरतों से अच्छी हालत में रहती हैं", गुलाब कहती है।

गुलाब की बहन को ससुराल में मार डाला गया। इस घटना ने गुलाब को भीतर तक हिला दिया। गुलाब पर भी ससुराल में कम अत्याचार नहीं हुए। लेकिन गुलाब अपनी बहन की मौत नहीं मरना चाहती थी।

इसी अंधेरे में गुलाब को अक्षरों की जोत दिखलाई पड़ी। वह उठ खड़ी हुई, अक्षरों के सहारे। गुलाब ने पहले अपने बूते पर औरतों को पढ़ाने-लिखाने की शुरुआत की।

"विरोध तो घणो (बहुत) हुआ। आज भी पड़ोस के लोग मुझे शक से देखते हैं। लेकिन मैंने अपना रास्ता चुन लिया है। अब मुझे कोई न रोक सके है।" गुलाब जोश भरी तेज़ आवाज़ में बताती है।

आज गुलाब कंवर एक उदाहरण बन गई है। घूंघट हटा कर, गोद में बच्चा लेकर जब दुबली, लंबी गुलाब चलती है तो औरतें कहती हैं—यह वही गुलाब कंवर है जो घुट-घुट कर मरती थी। सारे दिन रोती रहती थी।

"मैं अब अन्याय बर्दास्त नहीं कर सकूं—चाहे हमारे साथ हो या किसी दूसरे के साथ", गुलाब आत्मविश्वास भरी आवाज में कहती है।

साभार—अनौपचारिका

ऐसे शुरू होते हैं अंध-विश्वास

आपको एक मजेदार कहानी सुनाते हैं। एक गांव में छोटा-सा मंदिर था। सुबह-शाम पुजारी जी पूजा करते, भगवान को भोग लगाते। पूजा के समय एक बिल्ली मंदिर में आकर खटपट करती। तंग आकर पुजारी जी ने बिल्ली को बांधना शुरू किया।

समय बीतता गया। पुजारी जी का स्वर्गवास हो गया। नए पुजारी आए। मंदिर में आने वाले लोगों ने उन्हें बताया कि पूजा के वक्त पुराने पुजारी बिल्ली बांधते थे। एक बिल्ली को लाकर वहां बांधा गया। पूजा पूरी हुई। धीरे-धीरे उस मंदिर में बिल्ली का बंधना जरूरी हो गया। लोगों का कहना था कि बिना बिल्ली पूजा पूरी नहीं होती।

लोग यह तो नहीं जानते थे कि बिल्ली की खटपट से तंग आकर उसे बांधा गया था। बस, यह विश्वास जड़ पकड़ गया कि बिल्ली का बंधना पूजा के लिए ज़रूरी है।

यही बात अनेकों अंध-विश्वासों पर लागू होती है। दो-एक बार कोई घटना हो जाने पर हर बार मान लिया जाता है कि वह फिर होगी। □

साथिन रो कागद

राज्य इदारा, जयपुर द्वारा प्रकाशित 'साथिन रो कागद' बहुत पसंद आया। हमने सोचा कि इस कागद की बात औरों तक पहुंचाएं। कागद में उठाए सवालों पर सभी बहनें चर्चा करें। अगर आपके यहां कुछ बदला है तो हमें लिखें। हम आपके अनुभव छापेंगे।

राज्य इदारा, जयपुर को हमारा धन्यवाद।

संपादिका

प्यारी साथणियां,

ये दिन हमारा है। लुगाइयों का अपना दिन। कई सालों से हम इसे मनाते आये हैं। लुगाइयों की पहचान और सम्मान की बात अब गांव के लोगों तक भी पहुंची है। वे सब भी इन सवालों पर सोचने लगे हैं। हमें इस से ताकत मिली है।

हमारी बेटियां जो कल लुगाइयां बनेंगी, क्या हमने उनके बारे में भी कुछ सोचा है?
हम उन्हें कैसा बचपन देना चाहते हैं?
क्या वही जो कभी हमें मिला?
या हमारे मन में उस से कुछ अलग तस्वीर है?
कैसा था हमारा बचपन?
क्या हमारी साथिन संतोष की तरह—

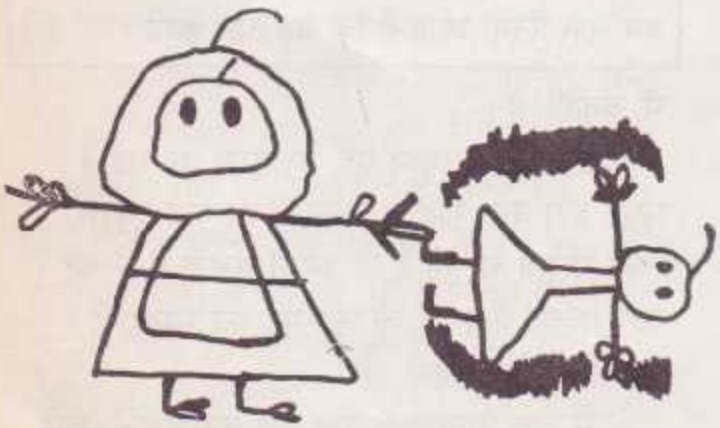

"मां बताती है, मेरी बड़ी बहन हुई तो मां की पूरी देख-भाल हुई। मैं हुई तो मां को ना तो घी दिया और ना ही दूध। दादी भी मेरा ध्यान नहीं रखती, मैं रोती तो वो मुझ पर गूदड़े डाल देती ताकि मेरे रोने की आवाज़ ना आये। मां जब चक्की पीस कर आती तब उसे मालूम पड़ता। वो गूदड़े हटा कर मुझे दूध पिलाती। मैं थोड़ा समझने लगी थी। पढ़ने के लिए कहती तो बापू भी मुझे मना करते। मुझे बुरा कहते। उस समय तो मैं अपना गुस्सा दबा जाती, लेकिन जब कोई छोरा-छोरी स्कूल जाते दीखते तो मन जलता। मैं उन से बस्ता छीन लेती, लड़ती और कई बार रो भी देती।"

लड़की के लिए तो हर खर्च भारी लगता है, कहा जाता है—

चिड़कली रो खायो खेत और बेटी
रो खायो घर, कदी न ऊबरे

अगर मैं—
घी, दूध या अच्छे खाने की मांग करूं तो...
"क्या कोल्हू में चलेगी"
अच्छा पहनूं तो...
"कुंवारी ही नाते जाएगी"
पढ़ने की बात करूं तो...
"क्या अफसरनी बनेगी"
क्यों होता है ये सब? क्या इसलिए कि मैं पराई हूं?

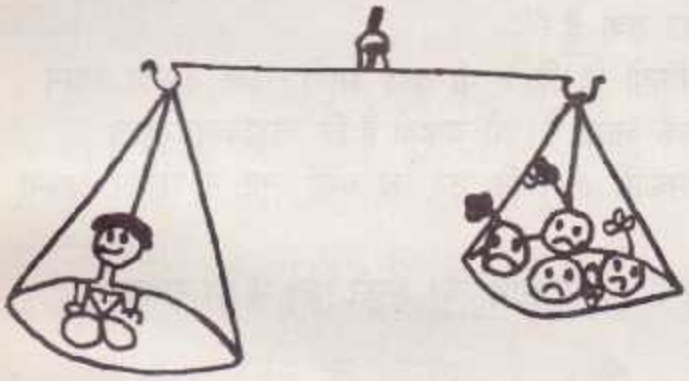

काकाजी भी मुझे खूब गालियां काढ़ते—"पढ़-लिख कर ये क्या निहाल करेगी।" मैं गुस्से में आकर उनकी पीठ पर कीड़ा छोड़ देती। मुझे गुस्सा भी खूब आता। कभी-कभी तो मैं मां से भी लड़ लेती। जैसे लक्खन तुममें हैं, वैसे ही मुझे भी दे रही है। सब उल्टे मुझे ही लड़ाका कहते। भाई पढ़ने जाते थे, मां उन्हें तो खूब धाप कर रोटी खिलाती और मुझे कम डालती। मां के खेत पर जाने के बाद मैं गुस्से में भाई को मारती। उसका गोडा फोड़ देती। दादी मुझे खेत पर रोटी और छाछ की मटकी ले जाने को देती। मैं मटकी फोड़ देती।"

संतोष के साथ जो कुछ हुआ
क्या सब के साथ वही होता है?
कई साथिनों ने बताया—छोरी पैदा होती है तो सुनने को मिलता है...

"राण्ड भाटा ही भाटा जण दिया"

क्या मैं सचमुच भाटा हूं? जब से होश संभाला, घर के हर काम में हाथ बटाती आयी हूं, पानी लाना, रोटी बनाना, कण्डे थापना, घर लीपना, खेत पर खाना देने जाना, बलीता लाना और ढोर-डंगर चराने जाना। हां... और जब मां मजूरी पर जाती तो घीसा और मूली को मैं ही खिलाती हूं।

थोड़ी और बड़ी हुई तो घर की आमदनी में भी हाथ बंटाने लगी। कभी गारा नाकने जाती तो कभी खेत पर। गलीचा बनाने के काम में तो खुद पैसे भी कमा के लाती।

"क्या मेरा मन कभी खेलने को नहीं करता? सुबह से शाम तक, बस काम में ही डूबी रहती। खेलने जाती तो सुनने को मिलता—इसके तो पैर ही नहीं टिकते। छोरी भी तो लुगाई जात ही है, ना उसके काम की पहचान ना हमारे।

क्या बेटी के साथ ऐसा करना ठीक है? क्या उस में जीव नहीं होता? पर लुगाइयां अपनी बेटी के साथ हो रहे भेदभाव को क्यों नहीं रोक पातीं? जो उन्होंने बचपन में खुद सहा है, उसे वो रिवाज़ मानती हैं। इस रिवाज़ को वो तोड़ने की बात सोच ही नहीं पातीं, इसलिए अपने बेटे-बेटियों में भेदभाव करती हैं।

किसी ने बचपन में हमारी कदर नहीं की, इसलिए हमने अपनी बेटियों की कदर भी नहीं जानी।

क्या ये भेद हमारे अंदर ऐसे रच-बस गया है, जैसे दूध में पानी, या कुछ बदल सकता है?

"हां, बदल सकता है।" माया किशनपुरा का कहना है—"साथिन बनने से पहले मैं अपने लड़के और लड़की में भेद करती थी। छोरी अगर मक्खन मांगती तो मैं कहती कि तू कौन-सा कमा कर लाएगी, बेटा तो कमाएगा। साथिन बनने के बाद मेरा सोच बदला—कि लड़का-लड़की बराबर है। अब लड़की को भी पढ़ने भेजती हूं और बराबर का खाने को देती हूं।"

ग्यारसीबाई का कहना है—"पढ़ाई-लिखाई से लड़कियां बिगड़ती नहीं हैं। उन्हें भी नई-नई बातों का पता लगना चाहिए। उनको भी अपने लिए जीने का हक है।"

साथिनों ने अपने सोच को बदला है। वो लड़कियों के लिये भी कुछ सपने, कुछ उम्मीद रखने लगी हैं। उनकी रोज़ की छोटी-छोटी बातों में थोड़ा फर्क आया है। वो चाहती हैं कि लड़कियां स्कूल जाएं, साइकिल चलाना सीखें, ज्यादा से ज्यादा जानकारी लें ताकि उन को कोई लूट न सके। अपना भला-बुरा खुद समझ सकें।

आज जब हम खुशी मनाने आए हैं तो अपनी बेटियों को भी साथ लें। अपने गांव में इन सवालों पर खुल कर बात करें:

क्यों हम लड़की को जिंदा रहने का ही अधिकार नहीं देना चाहते?

लड़की के जन्म पर क्यों दुख मनाते हैं?

क्यों लड़की पर ही सारे काम का बोझ डालकर उसका बचपन उस से छीन लेते हैं?

अपनी लड़कियों को आगे बढ़ने के समान मौके क्यों नहीं देते?

आपके खत के इन्तजार में

हम सब

अर्चना, ममता, संतोष, मंजू, बदाम,

आनन्दी, दिप्ता, गीता, सावित्री,

विद्या, ओमकंवर, सन्नी और भरत □

क्यों मैं ही कहलाती बांझिन

सासु मोरी कहति बांझिनिया,
ननद ब्रजवासिन हो
रामा मितरा के मारी पीटी,
धनिया द्वारे खड़ी रोवे हो।

जिस स्त्री के बच्चा नहीं पैदा होता या लगातार कई लड़कियां पैदा होती हैं, लड़का नहीं पैदा होता तो दोष उसी का माना जाता है। घर के लोग, पड़ोस के लोग शिकवे, तानों के मारे उसका जीना दूभर कर देते हैं।

डाक्टरों का कहना है कि ज़रूरी नहीं कि दोष स्त्री का हो। डाक्टरी जांच के आंकड़ों से साबित हो गया है कि एक चौथाई मामलों में पुरुषों में किसी कमी या दोष की वजह से बच्चा नहीं होता है। आधे मामलों में स्त्रियों में कोई कमी या दोष के कारण बच्चा नहीं होता। एक चौथाई मामलों में दोष दोनों में से किसी एक का हो सकता है या दोनों का। 10 फी सदी मामलों में कोई दोष न होने पर भी कई बार गर्भ नहीं हो पाता है।

बांझपन के कारण

स्त्रियों में बांझपन के कई कारण हो सकते हैं।

1. अंडाणुओं का न बनना।
2. अंडेदानी से बच्चेदानी तक आने वाली नली में कोई रुकावट।
3. बच्चेदानी का बहुत छोटा होना।
4. योनि-द्वार से बच्चेदानी तक जाने वाली नली का मुंह छोटा होना।
5. स्त्री की उम्र तीस-पैंतीस से ऊपर होना।

पुरुषों में बांझपन के कारण:—

1. पैंतालीस वर्ष से ऊपर उम्र।
2. नपुंसकता (कारण शारीरिक और मानसिक दोनों हो सकते हैं)।
3. शरीर में कुछ ऐसे तत्वों का होना जो शुक्राणुओं को पनपने नहीं देते या उनकी प्रजनन शक्ति कम करते हैं।
4. शुक्राणुओं का बहुत कम मात्रा में होना या कमजोर होना।

एक बार में हज़ारों की संख्या में शुक्राणु निकलते हैं परंतु उनमें से कुछ ही योनिद्वार से होकर अंडेदानी के बाहर की नली तक पहुंच पाते हैं।

कुछ कारण स्त्री-पुरुष, दोनों में हो सकते हैं—

1. बहुत ज्यादा मोटापा।
2. काम के कारण बहुत थका होना।
3. घबराहट या मानसिक कमजोरी।
4. मधुमेह की बीमारी।
5. अधिक नशा या धूम्रपान करना।

6. जनन-अंगों में पैदायशी गड़बड़ी या बचपन में हुई बीमारियों जैसे गलगांठ, खसरा व छोटी चेचक आदि के कारण गड़बड़ी।

गुण-सूत्रों का खेल

किसी स्त्री के सिर्फ लड़कियां ही पैदा होने पर अकसर उसे दोष दिया जाता है। लेकिन यह धारणा गलत है। लड़की या लड़का पैदा होना गुण-सूत्रों का खेल है। स्त्रियों के अंडाणुओं में केवल 'एक्स' गुण-सूत्र होते हैं। पुरुषों के शुक्राणुओं में 'एक्स' और 'वाई' दो तरह के गुण-सूत्र होते हैं। स्त्री का 'एक्स' और पुरुष का 'वाई' गुण-सूत्र मिलने पर ही लड़का पैदा होता है।

यदि पुरुष के शुक्राणुओं में 'वाई' गुण-सूत्र है ही नहीं तो लड़का पैदा नहीं होगा। इसे पुरुष का दोष नहीं कहेंगे, कुदरती कमी कहेंगे। स्त्री की तो कमी है ही नहीं। उसे तो कुदरत ने दिए ही 'एक्स-सूत्र' हैं।

इसलिए लड़कियां पैदा करने पर स्त्री को दोष देना सरासर गलत है।

बांझपन के लिए सिर्फ स्त्री को दोषी ठहराना नासमझी और नाइंसाफी है। बांझिन शब्द प्रायः एक कलंक और लांछन की तरह इस्तेमाल किया जाता है। उसका दोष न होने पर भी उसे सताया जाता है। पुरुष भी तो बांझ होते हैं। यह तो एक कुदरती देन है। इसमें किसी को भी दोष देना गलत है।

बच्चा न होने की स्थिति में और भी रास्ते हैं। बच्चा गोद लिया जा सकता है। किसी बेघर या अभावों में पल रहे बच्चे का जीवन सुधर सकता है। □

गलत धारणाएं छोड़ें

वंश यानि बाप-दादा का नाम बेटे से चलता है। यदि बेटा न हो तो वंश खत्म हो जाएगा। बाप-दादा का नाम लेवा कोई नहीं रहेगा।

आप ऐसे हज़ारों-लाखों बेटों को जानती होंगी जिनसे वंश का नाम कलंकित हुआ है। क्या इसे वंश चलना कहेंगी?

वंश व नाम अच्छे काम से युगों-युगों तक चलता है।

ज्योतिबा फुले और उनकी पत्नी सवित्री फुले के न कोई बेटा था, न बेटी। यह बात लगभग सवा सौ साल पुरानी है। ज्योतिबा पुणे (महाराष्ट्र) में रहते थे। उनके माता-पिता ने बहुत चाहा कि वह दूसरा ब्याह कर लें। उनका यही कहना था कि वंश कैसे चलेगा? लेकिन ज्योतिबा फुले नहीं माने।

आज केवल महाराष्ट्र में ही नहीं बल्कि पूरे देश में उनका नाम आदर से लिया जाता है। महाराष्ट्र में तो उनके नाम से अनेकों स्कूल, अनाथालय, सामाजिक संस्थाएं आदि चल रही हैं।

ज्योतिबा फुले ब्राह्मण थे लेकिन उन्होंने पुरानी परंपराओं को नहीं माना। उन्होंने लड़कियों की शिक्षा, विधवा-विवाह, अछूतों से मेलमिलाप पर बहुत जोर दिया। ब्राह्मणों ने उनका कस कर विरोध किया। ज्योतिबा डटे रहे और समाज में एक नई चेतना लाए।

बिना बेटे वाले ज्योतिबा का नाम आज भी चल रहा है। आप अच्छे काम करें। अपने पास-पड़ोस के दुख-दर्द में मददगार बनें। बेटे से नाम चले या न, अच्छे कामों से नाम जरूर चलेगा। □

मैं हंसना चाहती हूं

महिलाओं का एक समूह प्रौढ़ शिक्षा केन्द्र पर जुटा था। कुछ के सिर खुले थे, कुछ के ढके, कुछ थोड़ा घूंघट डाले थीं। पूछने पर कि वह क्यों पढ़ना चाहती हैं, एक ने कहा—"मैं चिट्ठी लिखना-पढ़ना चाहती हूं।" दूसरी ने कहा—"मैं अपना नाम लिखना, साइन करना चाहती हूं। अंगूठा लगाने में शर्म आती है।" तीसरी ने कहा—"मुझसे हिसाब किताब में कोई धोखा-धड़ी न कर सके।" एक युवती जिसका थोड़ा-सा ही मुंह घूंघट से दिखाई दे रहा था बोली—"मैं हंसना चाहती हूं।" और यह कह कर वह खिलखिलाकर हंस पड़ी। क्या सिर्फ यही कारण पढ़ना-लिखना सीखने के लिए काफी नहीं है?

साभार—अनौपचारिका

□

आओ वादा करें

समाज से एक वादा लेना चाहूंगी
कैद से छूटने की है ख्वाहिश हमें
कैदखाने जलाने का वादा करें
औरतों के लिए कुछ भी मुश्किल नहीं
ऐसी हिम्मत जगाने का वादा करें।
औरतों के सवालों पर आकर कभी
खूब चर्चा चलाने का वादा करें।
दुख अगर किसी भी बहन पर आ पड़े
प्यार की छांव देने का वादा करें।
रहके खामोश जुल्मों को सहते रहे
अब अपनी आवाज उठाने का वादा करें।

आबिदा सुल्ताना
(ज़िला अजमेर)

कानूनी जानकारी का फायदा

कंजर कालोनी पंडेर में दारू पीकर पत्नी को मारना पीटना, परेशान करना आम बात है। क्या यह कहानी सिर्फ उसी गांव की है? शायद हमारे देश की 90 फी सदी औरतों की है।

एक दिन सासेर बाई ने पति की रोज की मारपीट से परेशान होकर साथिन को अपना दुख सुनाया। उसने कहा, "शिविर में एक वकील ने बताया था कि औरत का पति या कोई और उस पर हाथ उठाता है तो उसे कानूनन सज़ा दी जा सकती है।"

साथिन ने धीरज से बात सुनी और बोली, "सासेर, यों दुखी होने से काम नहीं चलेगा। तुम्हारे आदमी को कई बार समझाया जा चुका है। वह समझाने वाले पर ही हाथ उठा लेता है। तुम पंडेर पुलिस थाने जाकर थानेदार को सब बात बताओ। अगर थानेदार के डर से तुम्हारा पति सुधर जाए तो ठीक है।"

साथिन और सासेर थाने गईं। थानेदार से कहा आप रिपोर्ट न लिखें। सिर्फ सासेर के पति को धमकी दे दें। थानेदार ने एक सिपाही को कंजर कालोनी भेजकर सासेर के पति को पकड़ कर थाने में चलने को कहा। इससे वह इतना डर गया कि माफी मांगने लगा। उसने सासेर से माफ़ी मांगी और मारना पीटना बंद करने की बात कही। सासेर से प्रचेता व साथिन मिलती रहती हैं। सासेर ने बताया कि उस दिन से उसका आदमी इतना डर गया कि अब उस पर हाथ नहीं उठाता है। उसके साथ अच्छी तरह रहता है।

उसे दारू पीना बंद करने के लिए भी समझाया। पूरी कालोनी में सभी आदमी दारू पीते हैं, बनाते हैं, उनका यही धंधा है। एकदम से नहीं छूट सकता। लेकिन उसने कहा है कि वह पीना कम करेगा। इस तरह सासेर पति की पिटाई से बच गई। पड़ोस के और लोगों पर भी इसका असर पड़ा। उन्हें लगा कि उनकी पत्नियां भी थाने पर रपट लिखा सकती हैं। अब सभी अपनी पत्नियों पर हाथ उठाने से डरने लगे हैं।

सासेर को देखकर महिलाओं को एक रास्ता मिला है। उसके देवर और बेटे को भी राहत मिली। उन्होंने भी कहा, "बहिन जी आपने इसका अच्छा इलाज कर दिया। हम भी इससे दुखी थे।"

पंचायत समिति जहाजपुर (राजस्थान) से
प्रचेता शांता व बुरड़
साथिन लाड शर्मा

□

कानून संबंधी ज़रूरी जानकारी

अगर आपके साथ कोई अपराध किया गया है और आप पुलिस को इसकी सूचना देना चाहती हैं, तो अपने घर के पास या जहां यह घटना घटी हो वहां के सबसे नज़दीक थाने में रपट दर्ज करानी चाहिए। आपकी शिकायत पर पुलिस कार्यवाही करके केस अदालत में दाखिल करती है।

प्रथम सूचना रपट (एफ आई आर) में लिखा जाता है—

मुल्ज़िम का नाम और पता।

अपराध होने का दिन, समय, तारीख व जगह का ब्यौरा।

अगर कोई गवाह है तो उसका नाम व पता आदि।

आप किसी भी अपराध की चाहे वह आपके साथ हुआ हो या आपकी जान-पहचान के किसी और व्यक्ति के साथ। आप उसकी रपट ज़ुबानी या लिखित रूप से जमा करवा सकती हैं। अगर रपट ज़ुबानी है तो पुलिस अधिकारी उसे लिखकर आपसे दस्तख़त करवा लेगा या अंगूठा लगवा लेगा। रपट दर्ज करके उसकी नकल बिना किसी फ़ीस के आपको देना पुलिस का फर्ज़ है। आप उसकी मांग ज़रूर करें।

अगर पुलिस आपको गिरफ्तार करती है तो आपको कारण जानने का पूरा हक़ है। शाम के बाद महिला पुलिस साथ में न होने से पुलिस आपको थाने नहीं ले जा सकती है। अगर आपको थाने में रखा जाता है तो भी महिला पुलिस का होना ज़रूरी है।

किसी स्त्री या 15 साल से कम के बालक को थाने में पूछताछ के लिए आने को मजबूर नहीं किया जा सकता। पुलिस को उससे उसके घर में ही पूछताछ करनी चाहिए।

पूछताछ के दौरान अगर आपको लगे कि कुछ सवालों का जवाब देने से आपको नुकसान हो सकता है तो आप उस समय जवाब देने से इंकार कर सकते हैं। आप को अपने वकील की राय लेने का पूरा हक़ है।

1. अगर आपका पति पीटता है;
2. ससुराल वाले आपके साथ क्रूर व्यवहार करते हैं, जैसे आपको बंद रखते हों, आपके आने-जाने पर पाबंदी लगाते हों;
3. आपको शारीरिक व मानसिक रूप से सताते हों;
4. आपको और आपके मायके वालों को दान-दहेज के लिए सताते हों;
5. आपकी जान को खतरा है;
6. आपको आत्महत्या के लिए मजबूर करने की कोशिश की जाती है;

इन सब हालातों में आप अपने इलाके के पुलिस थाने में शिकायत दर्ज करा सकती हैं। आपकी शिकायत पर पुलिस दोषी व्यक्ति को गिरफ्तार कर सकती है। आप पुलिस से अपने को हिफाज़त की जगह पहुंचाने की मांग कर सकती हैं।

याद रखें—अत्याचार को सहना, अत्याचार को बढ़ावा देना है।

आखिर साक्षर क्यों बनें?

बहुत से पके चेहरों पर एक ही प्रश्न
आखिर साक्षर क्यों बनें?
प्रश्न एक, उत्तर अनेक

अगर तुम्हें जानना है विश्व का इतिहास
अगर तुम्हें जोड़ना है दो और दो चार
अगर तुम्हें पढ़ना है कविता कहानी का भंडार
अगर तुम्हें समझना है व्याकरण का सार
अगर तुम्हें गुनना है दर्शन का वरदान
अगर खींचना चाहते हो रेखाएं आयतकार
अगर तुम्हें खोजना है राजनीती का आधार
अगर तुम्हें जाना है विज्ञानी दुनिया पार
अगर तुम्हें पाना है एक नया संसार
तो इसीलिए! इसीलिए!
बनो तुम साक्षर,
बनें हम साक्षर।

शेफाली बार्तोनिया

स्वयंसेवी संगठनों से स्त्रियों का विकास

समाज में वर्ग भेद और लिंग भेद के कारण जो असंतुलन पैदा हो गया है उसे कम करने की दिशा में आज अनेक स्वयंसेवी संगठन क्रियाशील हैं। महिला संगठनों और स्वयंसेवी संस्थाओं ने स्त्रियों के विकास में काफी योगदान दिया है। ये संस्थाएं बाढ़ और सूखे से पीड़ित लोगों को राहत पहुंचाने के लिए शुरू की गई थीं, पर जल्दी ही उन्हें समझ में आ गया कि यदि वे सचमुच सहायता करना चाहती हैं तो सहायता का पूरा ढांचा बदलना होगा। लोगों को शिक्षा व जानकारी देनी होगी, उनकी आमदनी बढ़ाने के साधन व रोजगार जुटाने होंगे, उन्हें कर्जों की सुविधा दिलानी होगी।

आंध्र प्रदेश के विशाखापतनम जिले में सुश्री विध्या और कल्पना ने भगवतूला चेरिटेबिल ट्रस्ट (बी. सी. टी.) के कार्यों का अध्ययन किया। 1976 से शुरू हुई यह संस्था इस समय 50 गांवों में लगभग 60,000 लोगों के विकास कार्यों में लगी है। राहत कार्य से शुरू होकर उसकी गतिविधियां— पौधों की नर्सरी, बालवाड़ी, स्वास्थ्य-संबंधी कार्यक्रम, कार्यकर्त्ताओं की ट्रेनिंग, मछली पालन, पशु पालन तथा नमक उत्पादन आदि हैं।

योजना की सफलता का मूल लोगों को साथ लेकर चलना है। जल्दी ही यह बात भी सामने आई कि स्त्रियों को साथ लिए बिना विकास कार्यक्रम आगे नहीं बढ़ सकता। बदलाव चाहने वालों और लाने वालों, दोनों में स्त्रियां अधिक थीं, शायद इसलिए कि घर की ज़िम्मेदारियां उन पर कम हो गई थीं। महिला मंडलों की संख्या तेजी से बढ़ी। उन्होंने बचत और कर्ज-संबंधी व आमदनी बढ़ाने वाले कामों जैसे पशु-पालन, नमक उत्पादन, दूध की बिक्री आदि को तेजी से बढ़ाया।

आर्थिक कार्यक्रम

समूचे कार्यक्रम में यह बात उभरी कि (1) गरीब औरतें भी पैसा बचा सकती हैं। सीमा के अंदर वे कर्ज भी ले सकती हैं और चुका भी सकती हैं। (2) पुरुषों के योग्य समझे जाने वाले क्षेत्रों जैसे रुपये का खर्च, पूंजी लगाना आदि के बारे में भी स्त्रियों में फैसला लेने की क्षमता है। वे बचत के तरीके ढूंढ निकालती हैं। इनसे उनका अपने ऊपर भरोसा बढ़ा है। नमक उत्पादन का शुरू से आखीर तक बिक्री आदि का काम वे कर रही हैं। पौधों की नर्सरी तैयार कर वे धन कमा रही हैं। मेरीपेलम गांव में उन्होंने राशन की दुकान खुलवाई और अब चलाने का पूरा काम स्त्रियां कर रही हैं।

गांव में बिजली का बिल न भरने के कारण तीन साल पहले बिजली कट गई थी। उन्होंने अफसरों से मिलकर पैसा इकट्ठा कर बिलों का भुगतान किया और वे बिजली वापिस लाने में सफल हुईं। गांव पंचायत में 9 में से चार पदों पर उनका चुनाव हुआ। यह बात भी सामने आई कि वे जातपात से ऊपर उठकर अन्याय के खिलाफ लड़ सकती हैं।

अन्याय का विरोध

एक नाई के साथ ज्यादती हो रही थी। उसकी गैरहाजिरी में गांव वालों ने उसका घर ऊंची जाति के परिवार को दे दिया। जब नाई लौटा तब उच्च परिवार ने घर खाली नहीं किया। पंचायत ऊंची जात वालों के साथ थी, लेकिन महिला मंडल नाई को उसका घर दिलवाने में सफल हुआ। शुरू में पुरुषों, खासकर ऊंची जाति के पुरुषों ने काफी विरोध किया, पर स्त्रियां संगठित थीं, धीरे-धीरे गांव वालों की समझ में आया कि वे

गांव की भलाई के लिए काम कर रही हैं और लोगों ने उनकी बात मानी।

तामिलनाडू के किलवायत्तन कुघन गांव में विकास कार्यक्रम में गांव की औरतें संगठित हैं। वैलोर क्रिश्चियन मैडिकल कालेज द्वारा शुरू की गई 18 इकाइयों में काम कर रही हैं। वे गांव में पानी, बिजली, सड़कों पर रोशनी और स्वास्थ्य संबंधी बेहतर सेवाओं की मांग कर रही हैं। इस सबके अच्छे नतीजे निकले हैं। गर्भवती और नई मांओं को बेहतर स्वास्थ्य सेवाएं मिल रही हैं। बच्चों को बेहतर खाना मिलता है। अब पहले से ज्यादा लड़कियां स्कूल जा रही हैं। स्त्रियां प्रशिक्षण कार्यक्रमों में उत्साहपूर्वक भाग ले रही हैं। घर और बाहर सब जगह ज्यादा सफाई दिखाई देती है।

स्वास्थ्य शिविर

महाराष्ट्र की 'सेवा' संस्था देश के कई भागों में फैली है। एक शाखा 'सेवा रूरल' गुजरात के खड़िया जिले में दस साल से स्वास्थ्य केंद्र चला रही है। वह गांव की दाइयों को प्रशिक्षण देकर बेहतर सेवा देने योग्य बनाती है। स्वास्थ्य शिविरों में स्त्रियां, पुरुष और बच्चे सब भाग लेते हैं। गांव की औरतों को छोटे-छोटे उद्योग-धंधे खुलवाए हैं—जैसे पापड़, बड़ियां व अगरबत्तियां बनाना। खेतिहर मजदूरी करने वाली स्त्रियां घर पर रह कर किए जाने वाले कामों को अच्छा मानती हैं। उनका तेज़ गर्मी और बरसात से तो बचाव होता ही है, काम भी साल भर मिलता रहता है।

कलकत्ता के एक उप नगरीय इलाके में 'सीनी' (चाइल्ड इन नीड) संस्था महिला मंडलों की सहायता से गांव में स्वास्थ्य कार्यक्रम चला रही है। बालवाड़ी, ट्यूबवैल, स्कूल और सार्वजनिक स्थानों पर शौचालय बनाए जा रहे हैं। साथ ही खेती से जुड़े उद्योग-धंधे, जैसे मुड़ी (लैया), चटाई व रस्सी बनाने और फलों के पेड़ लगाने को बढ़ावा दिया जा रहा है। संचालक डाक्टर चौधरी का कहना है "घर और बाहर, दोनों जगहों पर काम का मुख्य भार औरतों पर है।"

'अवेयर' संस्था

यह संस्था आंध्र प्रदेश के तेलंगाना जिले में काम कर रही है। इसका मुख्य उद्देश्य ग्रामीण और जनजातीय समूहों को आर्थिक और सामाजिक दिशा में आगे बढ़ाने की प्रेरणा देना है। वे इतने जागरूक हो जाएं कि सहायता कार्यों का सही उपयोग कर सकें। सफलता का मापदंड यह नहीं है कि कितने ट्यूबवैल लगे या कितने स्कूल या स्वास्थ्य केंद्र खुले, बल्कि यह होना चाहिए कितने फी सदी लोग अपने पैरों पर खड़े हुए। कितने लोग अपनी समस्याओं का हल ढूंढ पाए। संस्था ने स्थानीय पढ़े-लिखे युवकों का जत्था तैयार किया है जो गांवों में स्वतंत्र रूप से विकास काम कर रहा है। 'अवेयर' संस्था उनके आगे नहीं पीछे खड़े होकर उनकी मदद करती है। नेतृत्व जनता करती है।

आत्म विश्वास जगाया

पाचौड़ में 1977 से 'समविष्ट स्वास्थ्य एवं विकास कार्यक्रम' चल रहे हैं। इनका नारा 'सबके लिए स्वास्थ्य नहीं', 'सबके द्वारा स्वास्थ्य' है। पहले यहां स्वास्थ्य कार्यकर्त्ताओं को दाई का प्रशिक्षण देने की योजना बनी थी, पर जल्दी ही समझ में आ गया कि गांव की दाइयों को ही प्रशिक्षण देकर अच्छी सेवा योग्य बनाना चाहिए। गांववाले उन्हीं पर भरोसा करते हैं और उन पर निर्भर भी हैं। यह कार्यक्रम बहुत सफल रहा। इससे दाइयों का काम तो बेहतर हुआ ही, उनकी खुद की सोच में फर्क और व्यक्तित्व में निखार आ गया। वे जातपात के भेदभाव को भूल सकीं। उनमें से कुछ स्थानीय नेता बन गईं।

40 वर्षीय गंगूबाई दाई का काम करती थी। उसके पांच बच्चे थे। पति शराब पीकर मारपीट करता था। प्रशिक्षण के दौरान गंगूबाई सबसे अच्छी दाई साबित हुई। इससे उसका अपने ऊपर भरोसा इतना बढ़ा कि वह गांव वालों की मुखिया बन गई। घर में भी उसी की चलती है। आज गंगूबाई जब काम पर जाती है तब उसका पति घर में रहकर बच्चों की देखभाल करता है।

पाचौड़ में अब 42 प्रशिक्षित दाइयां हैं जो 42 गांवों में करीब 50,000 लोगों को सेवा दे रही हैं। पहले वे 6 फी सदी बच्चे जनवाती थीं, आज 80 फी सदी बच्चे इन्हीं के हाथों पैदा होते हैं।

मध्य प्रदेश के बस्तर जिले के आसना गांव में सरकार ने निस्तारी जंगल काटने का काम शुरू कराया। उसे रोकने के लिए स्त्रियां आगे बढ़ीं। धरना देकर और अफसरों से मिलकर वे निस्तारी जंगल को बचाने में सफल हो सकीं। अब वहां कौन से पेड़ लगने चाहिएं, इस बारे में वे सलाह देती हैं।

कमाई के धंधे

पंजाब और केरल में महिला मंडल बालवाड़ी, परिवार नियोजन और खाद्य सामग्री की बिक्री कार्यक्रम सफलता पूर्वक चला रहे हैं। पंजाब में स्त्रियां 2,000 बालवाड़ी चला रही हैं। कुछ महिला मंडलों ने शादी और अन्य उत्सवों के लिए ठेके पर शामियाने, फर्नीचर, बर्तन, भोजन आदि का प्रबन्ध किया है। वे सिलाई, बुनाई, खिलौने बनाना, साबुन और नील उत्पादन, क्राफ्ट केंद्र आदि आमदनी बढ़ाने वाले काम भी कर रही हैं।

बंगलौर में 'आस्त्रा' संस्था के मार्गदर्शन में स्त्रियां पेड़ लगाती हैं, इससे उनकी ईंधन की समस्या का हल निकलेगा। महाराष्ट्र में 'एफप्रो' संस्था लोगों को ज्यादा पेड़ लगाने और अनाज उपजाने का प्रोत्साहन दे रही है।

जहां-जहां महिला मंडल सक्रिय हैं औरतें न केवल स्वास्थ्य और सफाई की ओर जागरूक हुई हैं, वे अपनी कमजोर हालत के प्रति भी जागरूक हुई हैं। वे सोचने लगी हैं कि वे अपनी दशा में सुधार ला सकती हैं। मांओं और बच्चों की मृत्युदर में कमी आई है। रहन-सहन का स्तर सुधरा है। औरतें विकास की ओर कदम बढ़ा चुकी हैं।

आज देश के कोने-कोने में स्वयंसेवी संस्थाएं जुटी हैं। सरकारी कार्यक्रमों और जनता के बीच महत्वपूर्ण कड़ी बनकर वे महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती हैं।

महिला मंडल औरतों की समस्याओं को भले ही हल न कर पाएं पर उनकी समस्याओं को उभारने, उन्हें नए ढंग से सोचने, उनमें भरोसा पैदा करने, उन्हें उनका महत्व समझाने और उन्हें संगठन की ताकत का एहसास कराने के काम तो कर ही रहे हैं।

यह बात साफ है कि गांव की गरीब स्त्रियां

ग्रामीण औरतों की लड़ाई

15 फरवरी, 1990 को महाराष्ट्र के सांगली जिले के गांवों की 400 तलाकशुदा व पति द्वारा छोड़ी औरतों ने जिला कलक्टरेट के सामने धरना दिया। उनकी मांगें थीं :

1. बच्चों के लिए मुफ्त शिक्षा और होस्टल की सुविधा।
2. गुजारे भत्ते के लिए चल रहे मुकदमों का जल्दी फैसला।
3. उन्हें मुफ्त कानूनी सहायता।
4. सरकार उन्हें भी कुटुंब के मुखिया के रूप में माने।
5. सरकारी कार्यक्रमों में उन्हें कर्ज, स्वरोजगार और पेंशन मिलने में प्राथमिकता दी जाए।

अगले दिन 16 फरवरी की रात को धरना उठाया गया जब कलेक्टर ने उनकी कुछ मांगों को माना। कलेक्टर राजी हुए कि गांव की गौशाला की जमीन में औरतों को प्लाट दिए जाएं। जिन औरतों को ससुराल में कोई आर्थिक सहायता नहीं मिल रही है, उन्हें कुटुंब के मुखिया का दर्जा दिया जाए। उन्हें राशन कार्ड दिए जाएं और उन्हें सरकारी योजनाओं में प्राथमिकता दी जाए।

स्त्रियां हर स्तर पर लड़ाई लड़ रही हैं। महिला मंडलों की आश्चर्यजनक बढ़ोतरी हुई है। गुजारा-भत्ता न देने के फलस्वरूप महाराष्ट्र में कई पतियों को जेल की हवा खानी पड़ी है।

एक रपट

सेवा मंदिर, उदयपुर ने गिरवा क्षेत्र में स्वास्थ्य को बेहतर बनाने का एक कार्यक्रम बनाया जो बहुत सफल रहा। उन्होंने 7 मुख्य मुद्दों को लेकर काम शुरू किया।

1. किसी एक गांव को लेकर समुदाय में सफाई अभियान के लिए सभा बुलाई।
2. घर और पशुओं के रहने की जगह को साफ करने को कहा गया। इसमें फर्श की लिपाई-पुताई भी शामिल थी। घर के आसपास की सफाई भी करने को कहा गया।
3. खाद के लिए गड्ढे खुदवाकर सारा गोबर और मल तथा रसोई का कूड़ा आदि डालने का काम।
4. पीने का साफ पानी मिले इस विषय में हर संभव कदम।
5. घर के पास एक छोटा सब्जी का बगीचा जिससे कि घर का बचा, इस्तेमाल किया हुआ पानी साग-सब्जी, फल उगाने के काम में आए।
6. रोग निरोधक टीके आदि लगवाना।
7. सफाई अभियान के बीच-बीच में सभा बुलाना जिससे कि काम के बारे में खबर मिल सके।

उन्होंने 6 गांवों में बरसात के बाद तीन महीने यह काम करवाया और इन सभी कामों को सफलता पूर्वक किया गया।

पूरे सफाई अभियान में स्त्रियों की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण रही और यह अनुभव किया गया कि बिना उनके सहयोग के कार्यक्रम को सफलता नहीं मिल सकती थी। यह भी अनुभव किया गया कि समाज को बदलने में स्त्रियों की महत्वपूर्ण भूमिका है। विकास के हर कार्यक्रम में उन्हें शामिल किया जाना जरूरी है।

गरीबी, अशिक्षा, अज्ञानता और बीमारी को उनके जीवन से हटाने के लिए सबकी सोच में बदलाव की जरूरत है। इन सबके लिए उन्हें काफी कोशिश करनी होगी। कारणों को समझकर हल का तरीका ढूंढना होगा। इसमें स्वयंसेवी संस्थाएं काफी सहायक हो सकती हैं।

अपनी स्थिति से बहुत असंतुष्ट हैं। बदलाव लाने को तो वे उत्सुक हैं ही, काफी कुछ करने को भी तैयार हैं। वे शिक्षा और कमाई, कमाई और अपनी ताकत के बीच रिश्ते को समझने लगी हैं। यह बात दूसरी है कि उनके आर्थिक स्तर को ऊंचा होने में समय लगेगा।

संगठन जरूरी

बिना संगठित हुए स्त्रियां घर और समाज में अपनी स्थिति नहीं सुधार सकेंगी। महिला संगठन उन्हें सहारा और सहानुभूति दे रहे हैं।
हमारे सामाजिक ढांचे में ब्याह के बाद औरतें अपने परिवार वालों से कटकर अलग हो जाती हैं और उनकी स्थिति असहाय सी हो जाती है जिसके फलस्वरूप समाज में असंतुलन पैदा हो गया है। स्त्रियों की जिम्मेदारियों का पलड़ा बहुत भारी है और हक उनके हिस्से में नहीं के बराबर हैं। इस लिंग भेद को कम करने में महिला संगठन सक्रिय रूप से लगे हुए हैं।

स्त्रियों को साथ लेकर चलने में संगठनों की सफलता के ठोस कारण हैं:—

- स्त्रियां अधिक जिम्मेदार होती हैं।
- वे नये विचारों और नई बातों को अपने तक सीमित न रखकर फैलाती हैं।
- उनमें परिवार की स्थिति बदलने की इच्छा ज्यादा होती है।
- वे अपने सब साधन और कोशिशें परिवार की भलाई के लिए लगाने को तैयार रहती हैं। □

महिला पंचायत

30 मार्च 1990 का दिन छत्तीसगढ़ के इतिहास में खास दिन था। उस दिन 'छत्तीसगढ़ महिला जागृति संगठन' और 'छत्तीसगढ़ महिला मुक्ति मोर्चा' ने महिला पंचायत बनाई। 30 मार्च को उसकी पहली बैठक रायपुर में हुई। उसमें दहेज के कारण सताई, पति द्वारा मारी-पीटी या छोड़ी औरतों पर चर्चा हुई।

महिला पंचायत जरूरी क्यों ?

थाने व अखबार की रिपोर्टों से पता चला कि दहेज के कारण आए दिन स्त्रियों को मौत का मुंह देखना पड़ता है। पत्नी को सताने, एक के रहते दूसरी शादी करने या पत्नी को छोड़ देने आदि की घटनाएं भी बढ़ती जा रही हैं।

बिरादरी की पंचायत अक्सर इन मामलों पर चुप रहती है। यदि कोई मामला उसके सामने आए या उससे फैसला करने को कहा जाए तब वह ज्यादातर औरतों के खिलाफ ही फैसला देती है।

अदालत के दर्वाजे पैसे की कमी और मुकदमे लंबे समय तक चलने के कारण उनके लिए बंद हैं। वहां भी जीत पैसे वाले की ही होती है। राजकुमारी मोटवानी के साथ हुए बर्ताव ने न सिर्फ औरतों को बल्कि समाज के सब जागरूक नागरिकों को उकसाया है। वे इस तरह के मामलों का कोई रास्ता निकालना चाहते हैं। इन सभी कामों को ज्यादा मजबूती से करने के लिए महिला पंचायत बनाई गई।

इसमें अनेक महिला संगठनों में काम करने वाली 13 सक्रिय औरतों को चुना गया। पहली सभा में ९ औरतें पूरे समय मौजूद रहीं। बाकी ने न आ सकने के लिए माफी मांगी। इस पंचायत को सुप्रीम कोर्ट की श्रीमती इंदिरा जयसिंह की सलाह से बनाया गया।

रायपुर का गांधी चौक 5,000 से ऊपर लोगों से खचाखच भर गया। महिला संगठनों की सदस्याओं के अलावा स्कूल-कालिजों के लड़के-लड़कियां, शिक्षक, वकील, मजदूर संगठनों के प्रतिनिधि, मानव अधिकारों व लोक स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करने वाले कर्मी, संवाददाता और कुछ दर्शक मौजूद थे।

निर्देशक सिद्धांत

यह तय किया गया कि महिला पंचायत देश के स्त्री संबंधी कानूनों के आधार पर ही फैसले देगी। परिवार में स्त्रियों के क्या कर्त्तव्य और अधिकार हैं, समाज के नियम और मूल्यों के आधार पर तय किए जाएंगे। औरतों के अधिकारों की उचित सीमा तय की जाएगी।

राजकुमारी मोटवानी को उसका अधिकार दिलवाने में महिला संगठनों ने महत्वपूर्ण काम किया था। आज हालत यह है कि स्त्री के कर्त्तव्यों की लंबी सूची है जबकि उसके अधिकार नहीं के बराबर हैं। महिला मुक्ति आंदोलन में इसे 'मील का पत्थर' माना जा सकता है। औरतों को उनके अधिकार दिलाने के लिए जरूरी है कि जागरूक नागरिक

(औरत और पुरुष दोनों) मजबूत जनशक्ति बनकर उनके पीछे खड़े हों। महिला संगठन तभी सफल हो सकेगा।

छत्तीसगढ़ के महिला मंडलों ने परंपरागत कानूनी प्रक्रियाओं और महिला आंदोलनों से हटकर एक बुनियादी सवाल उठाया है कि एक ब्याहता औरत और उसकी बेटी के कानूनी अधिकार दिलाने में आम नागरिकों की क्या भूमिका हो सकती है।

राजकुमारी मोटवानी की लड़ाई हर जागरूक नागरिक की लड़ाई बनी थी। आज उसके सामने यही चुनौती है कि वह चुपचाप तमाशा देखता रहे या कुछ रचनात्मक कदम उठाकर राजकुमारी मोटवानी जैसी औरतों को न्याय दिलाए।

अधिकारों की लड़ाई

अब राजकुमारी अपने मजबूत इरादे और महिला संगठनों की मदद से अपने पति के घर इज्जत की जिंदगी बिताने चली गई है। उसकी हिफाजत की जिम्मेदारी भी हर जागरूक नागरिक की है। आज समाज यह बात डंके की चोट पर कह दे कि वह औरतों के प्रति अन्याय बर्दाशत नहीं करेगा। राजकुमारी मोटवानी के प्रसंग ने यह दर्शा दिया है कि उस जैसी औरतें अब अकेली नहीं हैं। बहिनापा उभरा है जो जाति, धर्म, वर्ग और राजनीति से ऊपर है।

औरतों का अपनी पारिवारिक जिम्मेदारियों के साथ सड़क पर आकर एक बहन के लिए न्याय मांगना साहस का नमूना है। औरत के प्रति अन्याय को पहचानकर आवाज उठाना है। 'महिला विमुक्ति आंदोलन' का उद्देश्य परिवार को तोड़ना नहीं, जोड़ना है। औरतों को उनके अधिकार मिलने ही चाहिएं और वे भी इज्जत की जिंदगी जीने की उतनी ही हकदार मानी जाएं जितने पुरुष।

छत्तीसगढ़ के अन्य छः जिलों में भी महिला पंचायत की बैठकें आयोजित की जाएंगी। ये उन क्षेत्रों की औरतों के केसों की सुनवाई करेंगी और फैसला देंगी।

× × × ×

राजकुमारी की संघर्षपूर्ण कहानी

राजकुमारी का ब्याह रायपुर के अशोक मोटवानी से 10 जून, 1979 को हुआ था। ससुराल में उसकी 5 ननदें, एक देवर व सास-ससुर हैं। वह बी.एस-सी. पास है। शादी के बाद उसने बी.एड. किया। उसका पति एक दवा कंपनी का प्रतिनिधि है।

शादी के समय उसकी ससुराल वालों ने कोई मांग नहीं की। राजकुमारी के पिता ने उन्हें बहुत सा सामान दिया। एक महीने ससुरालवालों का व्यवहार ठीक रहा। फिर वह बिलासपुर गई जहां उसके पति नौकरी करते थे। साथ में सास, देवर और ननदें भी गईं। वहां सब मिलकर उसके काम में नुक्स निकालते। पड़ोस की औरतों से उसे बात करने नहीं दिया जाता और उसकी बुराई की जाती।

शादी के बाद जब पहली बार वह अपने मायके गई तो साथ में एक ननद भी गई जिसका व्यवहार राजकुमारी के मायके वालों के साथ बहुत खराब रहा। बी.एड. राजकुमारी ने मायके में रहकर ही किया।

व्याह के एक साल बाद उसके ससुराल वालों ने कहना शुरू किया कि वे उसे नहीं रखेंगे। उसे जबरन उसके मायके भेज दिया गया। 1982 में पंचायत बुलाई गई। अशोक के मामा श्री नूतन दास ने समझौता कराया। उसके पति, सास-ननदें व देवर उसे मारते-पीटते भी थे। जब वह मां बनने वाली हुई तब सास की मर्जी के खिलाफ उसने ससुराल में ही रहने का निश्चय किया, पर खर्च उसे मायके से ही मंगवाना पड़ा। बच्ची के जन्म के बाद भी ससुराल वालों का व्यवहार खराब ही बना रहा।

एक दिन तो हद हो गई। दिन भर उसे कुछ भी खाने को नहीं मिला। वह रात को रसोई में गई, क्योंकि भूख से बेचैन थी। उसकी ननद ने उसके हाथ से रोटी छीन ली। दूसरे दिन सुबह जब नन्हीं मुनिया के लिए दूध गर्म किया तो ननद ने दूध छीन लिया। राजकुमारी का पति सब कुछ देखकर भी चुप रहा।

उस दिन राजकुमारी ने तय किया कि वह डाक्टर

मेघानी (जिन्होंने उसका रिश्ता तय करवाया था) के पास जाकर फैसला कराएगी कि ससुराल में उसे रोटी पाने का अधिकार है या नहीं ? तब कालोनी के लोगों को पता चला कि घर में क्या हो रहा है। पड़ोसियों ने निंदा की और उसके पति से मिले तो पति को शर्म महसूस हुई। उन्होंने लोगों से हाथ जोड़ कर माफी मांगी।

पिता के मरने पर वह मायके गई। उसे वापिस लाने कोई नहीं गया। उसने स्वयं घर में आने की कोशिश की पर नाकामयाब रही। उसने सिंधी पंचायत से तीन बार मामला तय कराने की कोशिश की। उन लोगों ने मामला सुलझाना तो दूर, उल्टे झूठी अफवाह उड़ा दी कि उसका पति दूसरी शादी कर रहा है। तब राजकुमारी ने बिलासपुर थाने में रपट लिखवाई कि ये लोग मुझे रखना नहीं चाहते हैं और मुझे मारते-पीटते हैं और एक लाख रुपये की मांग करते हैं।

पहला मुकदमा

1987 में रायपुर में उसकी मां और भाभी उसके ससुराली रिश्तेदारों से मिलीं जिन्होंने बताया कि उसकी सास कभी भी मामले को सुलझने नहीं देगी। सिंधी पंचायत के सदस्य श्री भोजवानी ने राजकुमारी से कहा कि तुम घर जाकर रहो। ये लोग ऐसे नहीं मानेंगे। रायपुर की सिंधी पंचायत ने राजकुमारी का साथ दिया। भोजवानी जी ने अशोक से कहा कि अगर तुम राजकुमारी को नहीं रखोगे तो तुम्हारा बुरा हाल किया जाएगा। समाज के लोग राजकुमारी को उसकी ससुराल छोड़ गए। 6 महीने ससुराल वालों का व्यवहार कुछ ठीक रहा। उसके बाद वही सब शुरू हो गया। पति ने एक दिन उससे तलाक के कागज पर दस्तखत कराने चाहे। राजकुमारी ने उसे मुंह में रखकर चबा लिया और कहा कि वह तलाक नहीं चाहती। फिर वे लोग उसे नशीली गोलियां खिलाने लगे। उसे बहुत नींद आती और खड़े-खड़े वह गिर जाती। 7 जुलाई 1988 को उसकी सास ने उस पर मिट्टी का तेल डालकर जलाने की कोशिश की। कुछ दिन बाद आधी बेहोशी की हालत में उसका देवर उसे मायके पहुंचा आया। जब उसके भाई ने भोजवानी जी को यह बताया तो वह दंग रह गए और कहा कि उसे अभी वापिस ससुराल लेकर जाओ। भोजवानी जी ने उन्हें श्री गणेश आहूजा वकील से भी मिलवाया और 498 ए में मुकदमा दर्ज कराया। 10 अगस्त 1988 को उसका पति और छोटी बहनें गिरफ्तार कर ली गईं। देवर और ससुर गायब हो गए। सास अपने मायके चली गई। पति और बहनें जल्दी जमानत देकर छूट गए।

राजकुमारी ने जबलपुर में भरण-पोषण का केस भी दर्ज किया, पर उसे कुछ नहीं मिला। तभी उसे पति के दूसरे ब्याह की खबर मिली। पति ने रेखा नामक 22 वर्ष की लड़की से जो केवल पांचवीं तक पढ़ी थी, तिरुपति जाकर शादी कर ली।

संगठन की मदद

राजकुमारी श्रीमती सयाल से मिली और उन्हें बताया कि वह ससुराल जाना चाहती है। ससुराल

आओ मिलजुल गाएं
(नारीवादी गानों का कैसेट)

जागोरी ने हाल ही में नारीवादी गानों का तीसरा कैसेट निकाला है। इसके पहले जो दो कैसेट बनाए हैं उनके नाम हैं 'तोड़ो बंधन' और 'बुलंद इरादे'।

'आओ मिलजुल गाएं' में बारह गाने हैं। सभी गाने संगीत से सजे हैं। यह कैसेट 30/- का है और इसके साथ गानों की किताब भी है जो 7/- की है। पहले दो कैसेट 20/- 20/- रुपये के हैं।

मंगवाने का पता है
जागोरी
बी-5 हाउसिंग कोऑपरेटिव सोसायटी
साऊथ एक्सटेंशन पार्ट 1
नई दिल्ली-110049

के घर पर उसका और उसकी बेटी का पहला अधिकार है। छत्तीसगढ़ की महिला जागृति संगठन की बहनों ने उसका साथ दिया। उसके साथ 7 से 10 दिसंबर तक उसके घर के आगे धरना दिया।

अशोक मोटवानी सामने नहीं आया। संगठन की 100 बहनों का साथ पाकर वह घर के अंदर घुस तो गई, पर सास ने उसकी डंडे से पिटाई की और उसकी आंखों में मिर्ची डालीं। संगठन की औरतों का धरना जारी रहा। पुलिस के दो सिपाही भी तैनात थे।

18 दिसंबर को 498 ए के मातहत सास और ननदों को फिर गिरफ्तार कर लिया गया। वह उसी घर में एक कमरे में रहती रही। दो कमरों में ताला लगा था। घर में खाने-पीने का कुछ सामान था, कुछ उसके भाई ने मदद की। सास-ससुर दो महीने बाद आए तो उसने दर्वाज़ा नहीं खोला। 7 मार्च को अशोक ने दर्वाज़ा तोड़ कर घर में प्रवेश किया। उसके बाद सास-ससुर व एक रिश्तेदार लीलाराम भी साथ रहने लगे।

उसके लिए एक मेज और गैस का चूल्हा, एक कमरे में रख दिया गया कि बनाए और खाए। फिर भी उसे हर संभव तरीके से तंग किया जाता रहा ताकि वह घर छोड़कर चली जाए। यहां तक कि उसका भाई जब भी मदद के लिए आता उसे अपने साथ पुलिस को लाना पड़ता। एक बार भाई ने 200 रु० दिए तो सास ने भाई के जाने के बाद उससे छीन लिए।

अशोक अपनी दूसरी पत्नी के साथ एक मित्र के मकान में रह रहा था। एक दिन राजकुमारी से आकर बोला कि तुम मेरे साथ रहो। उसने साफ इंकार कर दिया। वह ताड़ गई कि पति की योजना यह है कि वह इस बहाने घर से निकल जाए और अशोक दूसरी पत्नी के साथ अपने घर में आकर रहने लगे। ससुर, पति और सास सबने उसे मारा और कहा कि वे पुलिस बुलाकर उसे गिरफ्तार करा देंगे। एक दिन सास ने अपने को चाकू गोद लिया और कहा कि मैं पुलिस में रपट लिखाने जा रही हूं कि बहू ने मारा है। बड़ी ननद ने उसकी खूब पिटाई की। दूसरे दिन सुबह सबने घसीट कर उसे घर के बाहर निकाल दिया। मुनिया को भी पटक दिया। वह रोती कह रही थी—"मम्मी मैं समझी थी कि सपना देख रही हूं पर यह तो सच है।" पूरी कालोनी ने यह दृश्य देखा। उसके भाई ने आकर उसका मैडिकल चैकअप कराया। दिन में वह दर्वाज़ा तोड़कर घर में गई। देवर रसोई में छिप गया। पुलिस ने उसे उस दिन गिरफ्तार कर लिया। बाकी सब लोग उस दिन वहां से चले गए। धीरे-धीरे उसके सास-ससुर वहां से सामान हटाते रहे।

लड़ाई जारी है

राजकुमारी साहस के साथ अपने अधिकारों के लिए लड़ रही है, शहर का हर आदमी यह जानता है। सबने उसकी मजबूत इच्छा-शक्ति को सराहा है, पर मोटवानी परिवार अब भी अपनी जिद पर है कि वह राजकुमारी के मानसिक असंतुलन के आधार पर अशोक को तलाक दिलवा सकेगा।

क्या आपको लगता है राजकुमारी की दिमागी हालत ठीक नहीं है? क्या पागल लड़की बी.एस-सी. पहले दर्जे में पास कर सकती है? क्या पागल स्त्री पत्रकारों, पुलिस अफसरों व नागरिकों को तर्कपूर्ण ढंग से अपनी बात बता सकती है?

30 मई 1990 को राजकुमारी के पक्ष में एक और निर्णय लिया गया। राजकुमारी के पति और ससुर की कोशिश थी कि कोर्ट का सहारा लेकर वे उसे घर से निकाल दें, लेकिन कोर्ट ने फैसला दिया कि राजकुमारी को उसके वैवाहिक घर में रहने का पूरा अधिकार है। इस समय राजकुमारी और उसकी बिटिया ससुराल के घर में रह रही हैं। उसे विश्वास है कि अब उसे धोखे से भी वहां से नहीं निकाला जा सकता। राजकुमारी अब नौकरी तलाश रही है और बेटी को स्कूल में भर्ती करने की तैयारी कर रही है ताकि दोनों सामान्य जीवन बिता सकें। □

'राजकुमारी की कहानी अपनी जुबानी' पर आधारित।

जन्मी उसी कोख से
खेली उसी अंगना में
झेले सुख-दुख साथ

लिया हर काम में हिस्सा
फिर क्यों नहीं मिलता
मुझे मेरा हिस्सा

अंतर्राष्ट्रीय साक्षरता वर्ष में
'अबला' को 'सबला' बनाने
जुट जाएं हम
निरक्षरता मिटाएं
शिक्षा की सीढ़ी पर
'अबला' को चढ़ा कर
'सबला' बनाएं हम

कृष्णा कुमारी सिंह
कटिहार (बिहार)